योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 31 मार्च, 1999 अंक 12

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

SIDDHYOG

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु० 7-00
वार्षिक शुल्क	रु० 70-00
द्विवार्षिक	रु० 130-00
आजीवन	रु० 700-00

इस अंक में

- मे श्रुतम् गोपाय ! 1
- अमृतकण.................................. 2
- त्रिगुणातीत अवस्था (विशेष लेख) 4
- सम्पादकीय 10
- कर्मकाण्ड एवं योग — पूर्णचन्द्र पन्त 12
- किमस्तियोगः — द्वारका प्रसाद शर्मा..................... 16
- जीवन और मृत्यु का रहस्य — ब्रह्मचारी ओमप्रकाश 20
- योग साधन कक्षा में श्री महाप्रभुजी की विलक्षण कृपायें — अवनीश कुमार भटनागर 23
- योग से ही वेदान्त की उत्पत्ति — डॉ. स्वामी केश्वाचार्य 25
- श्री प्रेमचन्द सविता पर कृपा — केशवदेव उपाध्याय.................... 29
- अनासक्त-निष्काम कर्मयोग — डा. जयनारायन राय 33
- योगमनः/स्थिति, वर एवं श्राप — डा. विजय सिंह 36

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 31 अंक 12	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	मार्च 1999

मे श्रुतम् गोपाय!

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात् सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय। —*तैत्तिरीयोपनिषद्*

अर्थात्

जो वेदों में सर्वश्रेष्ठ है, सर्वरूप है और अमृतस्वरूप है वेदों से प्रधानरूप में प्रकट हुआ है वह ओंकार स्वरूप सब का स्वामी परमेश्वर मुझे धारणा-युक्त बुद्धि से सम्पन्न करे। हे देव ! मैं आपकी कृपा से अमृतमय परमात्मा को अपने हृदय में धारण करने वाला बन जाऊँ। मेरा शरीर विशेष फुर्तीला, सब प्रकार से रोग रहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय धुमती (मधुर भाषिणी) हो जाये। मैं दोनों कानों द्वारा अधिक सुनता रहूँ। हे प्रणव! तू लौकिक बुद्धि से ढकी हुई परमात्मा की निधि है। तू मेरे सुने हुए उपदेश की रक्षा कर।

अमृत कण

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्, कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः।
आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिर्न, सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि।।

(विवेक चूड़ामणि/६)

भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करे, देवताओं का भजन करे, नाना शुभ कर्म करे अथवा देवताओं को भजे, तथापि जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी (अर्थात् सौ कल्प में भी) मुक्ति नहीं हो सकती।

* * *

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः, कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।।

(मुण्डकोपनिषद् ३/२/५)

वे विशुद्ध अन्तःकरण वाले सर्वथा आसक्तिरहित महर्षिगण उपर्युक्त प्रकार से इन परब्रह्म परमात्मा को भली प्रकार प्राप्त होकर ज्ञान से तृप्त हो जाते है। उन्हें किसी प्रकार के अभाव का बोध नहीं होता, वे पूर्ण काम-परमशान्त हो जाते हैं। वे अपने आपको परमात्मा में लगा देने वाले ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्मा को सब ओर से प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मा में ही पूर्णता प्रविष्ट हो जाते हैं।

* * *

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

(केनोपनिषद् २/५)

यदि इस मनुष्य शरीर में परब्रह्म को जान लिया तब तो बहुत कुशल है; यदि इस शरीर के रहते-रहते उसे नहीं जान पाया तो महान् विनाश है, यही सोचकर बुद्धिमान पुरुष प्राणिमात्र में परब्रह्म पुरुषोत्तम को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

* * *

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र-यत्र मनो याति तत्र-तत्र समाधयः।।

(चाणक्य सूत्र १३/१२)

शरीर मिट्टी के कच्चे घड़े के समान क्षणभंगुर है। यदि घड़े को यत्नपूर्वक काम में लायें तो वह बहुत दिनों तक चल सकता है। परन्तु इस शरीर को अच्छी प्रकार रखने पर भी-यह टूट जाता है। शरीर की इस क्षणभंगुरता का बोध होने पर तथा परमात्मनिष्ठ हो जाने पर मनुष्य का मन जहां-जहां जाता है उसके लिये वहीं समाधि बन जाती है।

* * *

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वराः।
गुरूर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

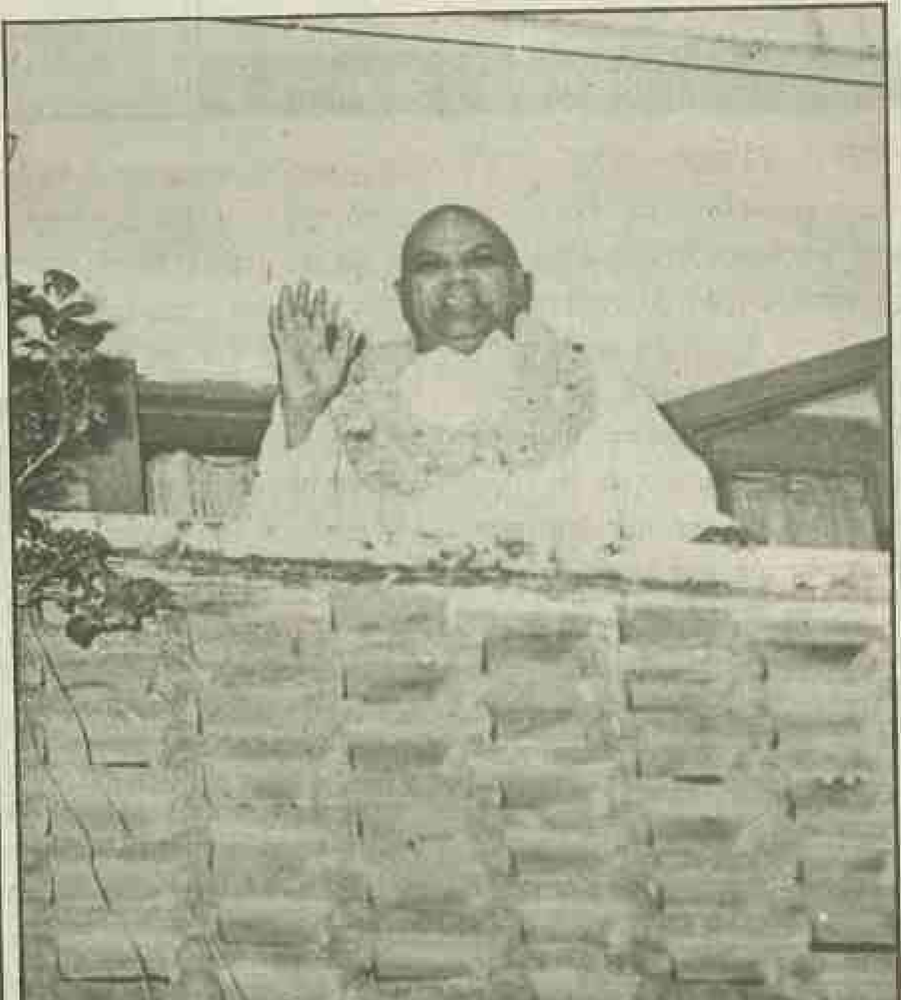

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज
संवाई आश्रम में भक्तों को आशीर्वाद देते हुए

विशेष लेख

त्रिगुणातीत अवस्था

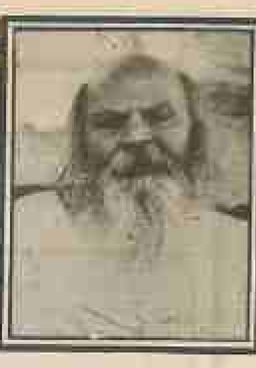

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्रकृति के तीन गुण हैं– सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण हर व्यक्ति का मन त्रिगुणात्मक है। सारा संसार गुणों से व्याप्त है। सबसे बड़ा आश्चर्य है अनन्त प्राणियों के मनों में त्रिगुणात्मक तीन गुण ही व्याप्त है। गुण तीन ही होने पर भी स्वभाव सबका अलग–अलग है। सतोगुण आदि की मात्रा भेद के कारण ही भिन्न स्वभाव सारे प्राणियों का हुआ करता है। सतोगुण आदि ये तीन गुण ही इस जीव को बाँधते हैं। **'तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् सुख संगेन बध्नाति ज्ञान संगेन चानघ'** सत्व गुण निर्मल होने से प्रकाशक है। सतोगुण पाप रहित हुआ करता है। सतोगुणी मनुष्य पाप से डरता है अनामय होता है, सतोगुण सुख से बाँधता है तथा ज्ञान से बाँधता है। मैं ज्ञानी हूँ, मैं योगी हूँ ऐसा भाव भी बन्धन है। देवताओं में सतोगुण काफी होता है। वे सुख में ही पड़े रहते हैं। आत्म प्रकाश की ओर जाने की प्रवृत्ति नहीं होती। मनुष्य लोक का सुख बहुत सीमित है। छोटे–छोटे कीट पतंग को भी सुख का अनुभव होता है। दो–चार घण्टे जीवित रहने वाला कीड़ा भी सुखी दुःखी होता है। यदि उसे बताया जाये कि मनुष्य सौ वर्ष जीता है, पहले तो सौ वर्ष नहीं समझेगा, यदि समझ लेगा तो बहुत आश्चर्य होगा। देवता लोग कल्पान्त देह वाले होते हैं। जैसे मनुष्य अपनी सौ वर्ष की आयु को कम समझता है वैसे ही देवता कल्पान्त आयु को भी बहुत थोड़ा समझते हैं। मैंने तुम्हें एक दिन बताया था कि प्रभु ही किसी दूसरे का नाम लेकर अपने ही चरित्र सुनाया करते थे। प्रभु जी बताया करते थे कि कोई योगी किसी गाँव में गया वहाँ दो बालक थे। उस योगी को अच्छे लगे। उन्होंने उन पर शक्तिपात कर दिया। उनके प्राणकोष ऊपर चले गये और नीचे से खेचरी का ताला लग गया। प्राणकोष के ऊपर चले जाने के बाद खेचरी कण्ठ विवर को रोक लेती है, तो प्राण नीचे नहीं आ पाते।

उनके संकल्प से ऊपर रहते हुये भी स्पन्दन रहता है, किन्तु शरीर में कोई परिवर्तन नहीं आता। उस योगी के शक्तिपात से वे लड़के दो–तीन सौ वर्ष तक समाधि में ही बैठे रहे। उसके बाद जब समाधि से उठे तो **'वृत्तिसारूप्यम्'** तो होना ही था। उन्हें अपना घर याद आया वे घर की ओर गये। किन्तु वहाँ पर अपना घर उन्हें नहीं मिला। माँ–बाप भाई-बन्धु कोई भी नहीं मिला। सब नये लोग ही मिले। अन्त में एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति ने बतलाया इस समय तो मैं कम से कम चार–पाँच पीढ़ी में हूँ। मैं तो तुम्हारे नाती का भी नाती हूँ। ऐसा वह बाबा कहने लगे। किन्तु उन बच्चों को दो सौ–तीन सौ वर्ष का समय क्षण भर के बराबर लग रहा था। वे

कहते थे कि हम तो थोड़ी देर पहले ही समाधि में बैठे थे। उस आनन्द के अन्दर और अनुभूतियाँ खत्म हो गई। कल्पान्त देह वाले देवता भी उस सुख को क्षणिक मानते हैं। इसलिये **'सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ'**। सतोगुणी देवता सुख से बँधते हैं अत: काल का ज्ञान नहीं होता।

दु:ख में काल का ज्ञान होता है। जो गुण राग पैदा करता है। रजोगुणी कर्मप्रधान व्यक्ति होते हैं प्रवृत्ति मार्ग में ही बढ़ते चले जाते हैं। उपनिषदों में बताया है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों जीव को बाँधते हैं।

'तयोस्तु श्रेय आददानः साधुभवति'। जो प्रवृति में चलता है लक्ष्य से गिर जाता है। तमोगुण अप्रवृति, प्रमाद, आलस्य, अज्ञान से बंधता है। मोह में उसे ग्रस्त कर लेता है। इन गुणों में से कभी सतोगुण प्रधान होता है। शेष दो गौण रहते हैं। कभी रजोगुण और तमोगुण क्रम से प्रधान बनकर अन्य दो को गौण कर देते हैं। यदि सतोगुण के बढ़ जाने पर मनुष्य का शरीर छूटता है तो वह ऊर्ध्व लोकों में जाता है। रजोगुण की प्रधानता में शरीर छूटता है तो कर्म करने वाले लोकों को प्राप्त होता है और तमोगुण की वृद्धि में शरीर छूटे तो साँप अजगर आदि निम्न योनियों में चला जाता है। रजोगुण वाले भी दु:खी रहते हैं। विदेशों में लोग अधिक अशान्त है। लाहौर में खलीफा नियामत राय थे उनका जितना बड़ा पेट था। उतना बड़ा पेट किसी का नहीं देखा। दो नौकर हमेशा साथ रहते थे। वह बताता था मैने वकालत में आठ लाख रु. कमाये। दो शादियाँ की किन्तु नरक ही भोगा। पायोरिया भी उसे हो गया था पेट व छाती में दु:ख ही दु:ख रहता था। कहने का अभिप्राय राजस-तामस वालों को कोई सुखी नहीं कर सकता। वे अपने मन के कारण दु:खी रहते हैं। शान्ति और सुख का रास्ता एक है सतोगुण वृद्धि हो जाये। इसका उपाय है मन्त्र-जाप, ध्यानाभ्यास, परोपकार, स्वाध्याय। ब्रह्मचर्य से सतोगुण बढ़ेगा। गुरुदेव की आज्ञा होती है दो घण्टे जाप व ध्यान करो उसे अवश्य करना चाहिये। सतोगुण शास्वत शान्ति देता है। परम योगेश्वर ने कालचक्र युगचक्र को एक साथ चलाने वाले भगवान की वाणी सुनाई है। अपने ध्यान का प्रदर्शन मत करो। समुद्र पीकर भी होठ सूखे दिखाओ। आत्म शक्ति को भीतर बढ़ाओं शक्ति जमा होती चली जायेगी। ताकत वाला यदि किसी के अपराध को क्षमा करता है तो वही वास्तव में क्षमा है। ताकत नहीं है तो गुस्सा किसी पर चल ही नहीं सकता इसलिए वह क्षमा नहीं है। जिसे गुण विचलित नहीं कर सकते, सुख–दु:ख सताते नहीं है। प्रिय–अप्रिय में जो सम है मान अपमान में जो सम है, कर्मफल की इच्छा नहीं है; जो भगवान् में विशुद्ध प्रेम रखता है वह गुणातीत हो जाता है। वह ब्रह्मत्व को पा जाता है। मैं तुम्हें प्रतिदिन गीता पाठ में भगवान की वाणी सुनाता हूँ। प्राणीमात्र के प्राण श्रीकृष्ण ने ब्राह्मी स्थिति में गीता कही है। उनके वचनों पर चलो। सतोगुण को बढ़ाओ और कृपा को पाकर त्रिगुणातीत बन जाओ। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय आदि भी सब गुणमय ही है। देखो ! ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि महायोगी हैं।

ब्रह्मरूपेण महायोगी रचयेदखिलं जगत।
विष्णु रूपेण महायोगी पालयेदखिलं जगत।
रूद्र रूपेण महायोगी संहरेदखिलं जगत।

अर्थात्—ब्रह्म रूप में ईश्वर जो महायोगी है संसार की उत्पत्ति करता है, विष्णु रूप में पालन तथा रूद्र के रूप में सृष्टि संहार करता है।

योगी और महायोगी में अन्तर केवल इतना ही रहता है कि महायोगी अनादि काल से योगी है। उनमें क्लेश कर्म का संस्पर्श नहीं रहता। किन्तु योगी योगाभ्यास करते—करते प्रकृति के अधिकार से मुक्त हो जाता है। बौद्धेय धर्म से आगे निकल जाता है। प्रकृति के नियम उन पर लागू नहीं होते। महासिद्धियों के स्वामी बन जाते है।

योगी अपनी शक्ति का स्वयं स्वामी होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश से आगे की जो सत्ता है वह सद्गुरू सत्ता है। उसे ही ओम्, प्रणव, ब्रह्म आदि—आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। देवी भागवत् में एक कथा आती है, वह इस प्रकार है—

एक बार ब्रह्मा, विष्णु और शिव भगवती लोक में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अलग ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव देखा— आश्चर्य चकित होकर भगवति से प्रार्थना करने लगे—

देवी ! तुम्हारे लोक में हम अलग—अलग ब्रह्मा, विष्णु, शिव का दर्शन कर रहे हैं। हमने आप के सुप्रभाव को जान लिया है। सारा संसार आप में ओत—प्रोत है।

इसी प्रकार से द्वापर युग में कृष्णावतार होने पर ब्रह्मा जी भगवान कृष्ण के दर्शन करने गये ! भगवान ने पूछा— आप कौन से लोक के ब्रह्मा है ? इसका अर्थ यह है कि ये ब्रह्मादि अपने—अपने लोकों के लोकाधिपति हैं। एक—एक लोक के स्वामी हैं।

सद्गुरू सत्ता इन सब से आगे की सत्ता है जिसे सद्गुरू सत्ता, प्रणव सत्ता, ब्रह्मसत्ता आदि—आदि नामों से पुकारा जाता है। योगदर्शन में ईश्वर के लिये **'स पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्'** कहा गया है। यह भी कि **यत्र अवच्छेदनार्थेन कालो न उपावर्तते सः गुरु** । उस सत्ता के भय से ही **'भयादस्य अग्निस्तपति भयाद तपति सूर्यः'**।

अर्थात् जिस सत्ता के भय से अग्नि जलती है सूर्य तपता है वायु चलती है। यमराज दौड़े—दौड़े फिरते है, वह है सद्गुरू सत्ता। एक घटना याद आई—

एक बार श्री प्रभु जी हरिद्वार में कुम्भ में गये थे। श्री मुल्खराज जी महाराज भी साथ में थे। वे कहने लगे— प्रभो ! यहाँ कैसे पता लगायें कि कौन महात्मा कितनी पहुँच का है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया। हर व्यक्ति के आस—पास किरणें होती हैं। जिसके आस—पास की किरणें जितनी दूर तक हों वह उतना ही पहुँच का महात्मा होता है। एक बार श्री प्रभुजी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। ध्यानाभ्यासियों ने देखा कि ब्रह्मादि सभी देवता श्री प्रभु जी की पूजा कर रहे हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ यह देखकर। उस समय वहाँ एक वैष्णव महात्मा भी थे। उन्होंने तो कहा यह माया है चर्चा चलते—चलते श्री प्रभु जी तक पहुँच गई। श्री प्रभु जी आराम कुर्सी पर विराजमान थे। हमारे ध्यानाभ्यासी गुरू भाई—बहिन तथा अन्य जो वहाँ उपस्थित थे, प्रश्न करने लगे— प्रभु जी यह क्या बात है सभी देवी देवता आप की पूजा कर रहे थे ? इसी प्रकार की शंका एक बार अर्जुन को भी हुई थी। भगवान ने कहा— **'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनु रिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्'** अर्थात् इस योग को

सबसे पहले सूर्य को बताया था। सूर्य ने मनु को बताया और मनु ने इक्ष्वाकु राजा को बताया था। यह सुनकर अर्जुन के मन में शंका उत्पन्न हो गई और उसने भगवान से प्रश्न कर दिया—

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथं एतद्विजानीयाम त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।

भगवान ! आपका तो जन्म अभी हुआ है और सूर्य तो सृष्टि के आदि में हुये हैं। इस प्रकार से आपने उन्हें योग का उपदेश दिया यह मैं कैसे समझूं ? भगवान ने इसका उत्तर देते हुए अर्जुन को समझाया।

'बहुनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।

अर्थात् हे अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन्हें मैं तो जानता हूँ किन्तु तुम नहीं जानते। इसी प्रकार से हमारे गुरू भाईयों को भी शंका हो गई कि सारे देवी देवता श्री प्रभु जी पर पुष्प वर्षा करके नमस्कार क्यों कर रहे हैं ? उस समय मैं भी वहीं था। गुरू भाईयों के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री प्रभु जी ने कहा—वे इसकी अपने शरीर की ओर संकेत कर पूजा नहीं कर रहे थे वे उसकी (ऊपर की ओर अंगुली उठाकर) पूजा कर रहे थे। कहने का अभिप्राय था कि शरीर का रूपक दूसरा और भीतर तत्व दूसरा। श्री प्रभु जी के अन्दर जो ब्रह्म तेज था उसी को वे नमन कर रहे थे।' श्री मुल्खराज जी महाराज ने हरिद्वार कुंभ में ध्यान में महात्माओं के तेज को देखना शुरू कर दिया। किसी महात्मा का तेज हरिद्वार तक फैल रहा था— किसी का सहारनपुर तक फैला हुआ था—एक महात्मा का तेज सारे भारत में फैला हुआ दिखाई दिया— इसके बाद श्री मुल्खराज जी महाराज ने श्री प्रभु जी के तेज को देखना आरम्भ कर दिया। वह तेज सर्वत्र व्यापक हो रहा था। उन्होंने तेज की एक किरण को पकड़ कर उसके अन्त तक पहुँचने का प्रयास किया अनेक लोक—लोकान्तर पार कर गये किन्तु किरण का अन्त न पा सके। अन्त में श्री प्रभु जी ने हल्का सा थप्पड़ मारकर उठा दिया और कहने लगे हमसे ही उपाय पूछा और हमारी ही परीक्षा लेनी शुरू कर दी और परीक्षा भी ले न सके। यही सद्गुरू सत्ता है जो अखण्ड मण्डलाकार व्याप्त है।

साधक को अपनी साधना मूलाधार कमल से आरम्भ करनी चाहिये। ध्यान की उच्चावस्था में साधक का मन प्रकाश से परिपूर्ण हो जाता है उसी प्रकाश में सब देवताओं के दर्शन होने लगते हैं। भगवान ने अर्जुन को गीता युद्ध क्षेत्र में सुनाई युद्ध की समाप्ति के पश्चात अर्जुन ने पुनः भगवान के श्रीमुख से वही गीता सुनने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु भगवान ने इन्कार कर दिया कि वह गीता अब तुम्हें मैं नहीं सुना सकता क्योंकि मैंने योगयुक्त होकर तुम्हारे प्रति कहा था वह पर—ब्रह्म की वाणी थी। **'परं हि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया'** मनुष्य की आकृति में किसका व कितना प्रकाश विद्यमान है यह वही जान सकता है जिसे वह जनवा दे कठोउपनिषद् का वचन है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेध्या न बहुना श्रुतेन।
यमैवेष वृणुते तेनैव लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात् जिसको यह आत्मा स्वयं वरण कर ले उसे ही अपने स्वरूप को प्रदर्शित कर देता है।

इसलिये मनुष्य को पवित्र योग मार्ग का अवलम्बन लेना चाहिये। योग विद्या से बढ़कर कोई

विद्या नहीं है। अन्तर्जगत में प्रवेश योग से ही मिल सकता है। चंचल मन को एकाग्र करने के लिये भगवान ने गीता में अभ्यास और वैराग्य का उपदेश दिया है। वैराग्यवान व्यक्ति ही संयमी बन सकता है **'असंयतात्मना: योगो दुष्प्राप इति** में इति यह भगवद्वचन हैं। जो आत्मवशी है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण है वह ही योग में सफलता प्राप्त करता है। योग का अभ्यास करते–करते यदि योगी पथभ्रष्ट भी हो जाये तो भी सद्‌गति भाजन तो रहता ही है। पुन: मानव शरीर को पाकर साधना में लग जाता है।

स्वर्ग में पहुँचने के दो मार्ग हैं– एक है कर्मकाण्ड द्वारा अनेक यज्ञादि सम्पादन करके तथा दूसरा है योगाभ्यास से। जो कर्मकाण्ड से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं उनके लिये प्राय: नियम रहता है तप से स्वर्ग और स्वर्ग से नरक। क्योंकि कर्मकाण्ड द्वारा स्वर्ग प्राप्ति होने पर वहाँ उसे दिव्य भोग प्राप्त होते हैं। पुण्य क्षीण हो जाने पर उसे फिर मर्त्य लोक में आना पड़ता है। यहाँ पर उसका मन भोगों की प्राप्ति में भटकता रहता है। फलत: नरक की ओर चला जाता है। किन्तु जो योगभ्रष्ट होकर स्वर्ग में जाते हैं इसके लिए यह नियम नहीं है। स्वर्ग में बहुत काल तक रहने के बाद भी मनुष्य जन्म मिलने पर फिर उन्हें योग की प्रतीति हो जाती है। इसी बात का संकेत भगवान ने गीता में किया है–

प्राप्य पुण्य कृत्तां लोकान् उषित्वा शाश्वती समा:।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।।

अर्थात् योग भ्रष्ट साधक का जन्म पवित्र धनवानों के यहाँ होता है। वहाँ पर वह पौर्वदैहिक बुद्धि संयोग को पाकर इससे आगे बढ़ने में लग जाता है।

योग दर्शन में भी इसी बात की पुष्टि मिलती है। **'भव प्रत्ययो विदेह प्रकृति लयानाम्'**

जो विदेह तथा प्रकृतिलीन योगी है उन्हें भव प्रत्यय होता है। भव प्रत्यय का अर्थ है जन्म से ही ध्यान लगने लगता है। योगाभ्यास में स्वत: प्रवृत हो जाता है। प्रकृतिलीन योगी वह कहलाते हैं, जो योगी ध्यान करते–करते साधनावस्था में ही शरीर छोड़ देते हैं।

जैसे योगी ध्यानाभ्यास द्वारा गन्ध तन्मात्रा का साक्षात्कार करता है। तो उसका चित्त गन्धमय हो जाता है **गन्धोऽहम्** की अनुभूति उसको होने लगती है। इसी प्रकार से शब्द–स्पर्श, रूप रसादि में अपने चित्त को योगी लय कर देता है। यदि साधक इन्हीं अवस्थाओं में पहुँचा हुआ आत्मा ज्ञान समझ बैठे अथवा उसका शरीर पात हो जाये तो उसको पुन: शरीर धारण करना पड़ेगा। क्योंकि उसका चित्त साधिकार होता है– वह कृतकृत्य अभी नहीं हुआ है। ऐसे लोगों को जन्म से ही ध्यान की स्थिति प्राप्त होती है। वे भव प्रत्यय वाले योगी कहलाते हैं।

मैं एक दृष्टान्त देकर इस बात को स्पष्ट करता हूँ। कानपुर में मेरे प्रिय बच्चे सुरेश चन्द्र शर्मा B.I.C. के M.D. थे। उनके घर पर हमारा योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। सुरेशचन्द एक दिन लड़के को मेरे पास लाया और कहा– महाराज जी! इस लड़के का बचपन से ही ध्यान लगता है यह किसी से दीक्षित भी नहीं है। उस लड़के से हमने पूछा–लल्ला–सारी बातें विस्तार से बताओ। उसने कहा–महाराज जी मुझे अपने पूर्व जन्म की सब बातें याद हैं। मैं पूर्वजन्म में खूब ध्यानाभ्यास किया करता था– मुझे अपनी पत्नी–बच्चे सभी याद हैं। इस जन्म में इस लड़के ने अपने पूर्वजन्म

के ३६ वर्ष के लड़के की शादी अपने पैसे से कराई। इस जन्म में लड़का खूब धनाढ्य परिवार में पैदा हुआ था।

एक बार यह लड़का हरिद्वार–ऋषिकेश गया वहाँ उसने एक भिखारी को पहचान लिया। वह उसका पूर्व जन्म का साथी था– इस लड़के ने उस भिखारी को काफी पैसे दिये और कहा– लो, ये पैसे। तू मेरे पिछले जन्म का साथी है। वह भिखारी आश्चर्य चकित होकर लड़के से कहने लगा–बाबू जी मैं आप का साथी कैसे हो सकता हूँ ? इस लड़के ने कहा– हम दोनों पिछले जन्म में साथी थे। मेरा अमुक नाम था और तेरा यह नाम था–हम दोनों गन्ने के खेत में गन्ने चूसने जाया करते थे। खेत में ही मैं ध्यानाभ्यास किया करता था। किन्तु मेरे कहने के बावजूद भी तुम कभी ध्यान में नहीं बैठे। भिखारी ने सारी बातों की पुष्टि की।

मैंने इस लड़के से पूछा–तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई थी ? लड़के ने कहा– मुझे ध्यान में ही ज्ञान हो गया था कि इस दिन इतने बजे मेरी मृत्यु होगी'' उस दिन मैं ध्यान में बैठ गया–ध्यान में ही मेरे प्राण निकल गये। कैसे प्राण निकले मुझे इसका भी ज्ञान नहीं हुआ। इस जन्म में मुझे पूर्व जन्म की सारे बातें याद आने लगी।

इसी प्रकार के और भी साधक जो सम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में अथवा प्रकृति लीन दशा में शरीर छोड़ते हैं वह अगले जन्म में भव प्रत्यय वाले योगी होते हैं अर्थात् उन्हें ध्यान जन्म सिद्ध होता है।

मेरी इन बातों को मन में धारण करके अपने आप को पवित्र योग मार्ग में लगाओ। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा– '**त्रैगुण्य विषया: वेदा: निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन**'। हे अर्जुन ! वेद त्रिगुण विषयक हैं। तुम इन तीनों गुणों से परे हो जाओ। गुणों से पार जाने का एक ही मार्ग है और वह है योग। निर्बीज समाधि में योगी निर्गुण अवस्था में पहुँच जाता है। उस समय वह ब्रह्मत्व में प्रतिष्ठित होता है। अत: तुम इसी परम पद के लिये प्रयत्नशील रहो। जो ऐसा प्रयत्न करेंगे श्री प्रभु जी की कृपा अवश्य होगी।

* * *

'अपने आप में विश्वास करो। इसके बिना मुक्ति नहीं है। विश्वास करो और शक्तिशाली बनो। आज हमें इसी की आवश्यकता है। मैं एक भारतीय हूँ, प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है, भारत मेरे लिए स्वर्ग है, भारत का हित मेरा हित है। हे जगजननी, मुझे मनुष्यता प्रदान कर; मुझे मनुष्य बना।'

–स्वामी विवेकानन्द

सम्पादकीय

'सिद्धयोग' के लिये 'सिद्धयोग'

नित्य स्मरणीय पूज्यपाद गुरूदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा संस्थापित **'सिद्धयोग'** मासिक इस अंक के साथ ही अपनी आयु के ३१ वर्ष पूरा कर ३२ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। योग के दुरूह सिद्धान्तों को सरल भाषा में समझाकर सिद्धयोग की साधना को सुचारू रूप से चलाने के लिये गुरूदेव ने इसे प्रकाशित करने का संकल्प किया था। उनके संकल्प से संस्थापित यह वृक्ष सम्यक् प्रकार से पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। योग सिद्धान्तों की प्रकाशिका इस पत्रिका का पत्रिका जगत में अद्वितीय स्थान है। योग विषय की गूढ़ता की व्याख्या एवं इस विषय की प्रचुर सामग्री के कारण ही इसे अधिकाधिक ख्याति प्राप्त हो रही है। हमारे पास स्थान—स्थान से पाठकों के पत्र आते रहते है जिनमें विशेष रूप से इस बात का संकेत रहता है कि **'सिद्धयोग'** गागर में सागर भरने का स्तुत्य प्रयास कर रहा है। आजकल योग के प्रचारक संस्थायें एवं उनसे जुड़े लोग योग को रोगोपचार (Therapy) के लिये ही उपयोग में ला रहे हैं। योग के बड़े—बड़े केन्द्रों में भी योग सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार कम तथा आसन व षटकर्मों का प्रचार अधिक होता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि आने वाली पीढ़ी यह नहीं जान पा रही है कि योग अमृतविद्या है, इसकी गरिमा तथा पवित्रता से मनुष्य का जीवन परम पवित्र होकर संसार को पावन व सुखी बना देता है।

मानव आदिकाल से ही बन्धन और मुक्ति के स्वरूपों पर विचार करता चला आ रहा है। हमारे ऋषि एवं मनीषियों ने इनके स्वरूप को समझा और बन्धन से पूर्ण रूप से मुक्त होने का उपाय ढूंढा। वे स्वयं तो मुक्त हुये ही है साथ—साथ में आने वाली पीढ़ी के लिए भी वे पद्‌चिन्ह छोड़ गये। आज मनुष्य साधना के जिन रहस्यों से परिचित होना चाहता है वह पूर्व में भी इसी प्रकार से सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिये प्रयत्नशील रहा है। मानव की यह साधना चिरकाल से चली आ रही है। भारतीय योगियों से सृष्टि के प्रत्येक रहस्य का करतलआमलकवत् ज्ञान प्राप्त किया है। यह ज्ञान की धारा आज भी अक्षुण्य बह रही है।

विश्व के अध्यात्म केन्द्रों अथवा धर्म स्थलों पर दीपज्योति को अखण्ड रूप से प्रज्वलित रखने की प्रथा है। बौद्ध एवं जैन मन्दिरों में प्रायः बड़े—बड़े घृतपात्रों में मनोंघृत पड़ा रहता है और बीच में एक ज्योति जलती हुई दिखाई देती है। साधना की दृष्टि से यदि इसकी उपादेयता पर विचार करें तो इतना ही समझ में आता है कि मानव देह में परम चैतन्य अखण्ड ज्योति के रूप में निरन्तर मानव जीवन को आलोकित करता आ रहा है। पूजा स्थलों पर जलाया जाने वाला अखण्ड दीप इसी दीप का प्रतीकमात्र है। इस भौतिक अखण्ड ज्योति का साधना से सीधा सम्बन्ध नहीं है।

आत्मिक अखण्ड चैतन्य का ज्ञान प्राप्त करना ही योग साधना का परम लक्ष्य है। उस अखण्ड चैतन्य

का ज्ञान प्राप्त कर योगियों ने उस परमतत्व का कई प्रकार से वर्णन किया है तभी तो कहा जाता है **'एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति'**। उस एक परम सत्य को विद्वान कई प्रकार से बतलाते हैं। वेदों में वर्णित ज्ञान उस परम सत्य को प्राप्त करने में परम सहायक है।

सिद्धयोग पत्रिका का लक्ष्य है साधक को योग के विशुद्ध स्वरूप का बोध कराकर उसे उस परमज्ञान का अधिकारी बनाया जाये जिसके लिये मनीषी विद्वान सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। योग के सिद्धान्तों का ज्ञान योगी के लिये आवश्यक है। सिद्धान्त का ज्ञान होने पर ही उस मार्ग के प्रति श्रद्धा बनती है। कई साधकों को **'सिद्धयोग'** के नियमित पाठ से ही गुरूदेव की कृपा प्राप्त हुई है। **सिद्धयोग** का नियमित अध्ययन साधक को सिद्धकृपा का अधिकारी बनाता है। उसे योग की भूमिकाओं में प्रवेश करने में सक्षम बनाता है। जो योग सिद्धान्तों का ज्ञाता नहीं है, अज्ञ है, उनके लिये भगवान ने कहा है—**अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति** अर्थात्—जो अज्ञ है अश्रद्धालु तथा संशयात्मा है वह अपने पथ से भ्रष्ट हो जाया करता है। इसलिये जो **'सिद्धयोग'** का पाठक है वह कालान्तर में सिद्धकृपा का अधिकारी बन **'सिद्धयोग'** का अधिकारी बन जाता है। सिद्धयोगियों के विचार व सन्देश इसी माध्यम से जिज्ञासुओं तक पहुँच पाते हैं। इसी से साधकों के संशय मिट जाया करते हैं। गुरुदेव की प्रेरणा व संकल्प भी इन लेखों में प्रभावी रहता है।

इसलिये सिद्धकृपा के आकांक्षी सभी साधकों के लिये आवश्यक है कि वे इस अखण्ड दीप को प्रज्जवलमान रखने के लिये स्वयं इसका अध्ययन करें तथा अन्यों को भी करावें। योग का यह प्रथम सोपान है। योग प्रचार का भी यह एकमात्र माध्यम है। स्वाध्याय का यह मार्ग साधकों के वृत्ति शोधन में अनुपम लाभ देगा इसमें कोई संशय की बात नहीं है।

वेद किसी पुस्तक का नाम नहीं है। परमात्मा अपने दिव्य ज्ञान को शुद्ध अन्तःकरण वाले योगियों के मन में प्रकाशित कर देता है यह प्रक्रिया हमेशा से चली आ रही है। इसलिये अन्तःकरण शोधन ही साधक का लक्ष्य है जिससे परमात्मा का दिव्य ज्ञान उसमें स्वतः स्फुटित होने लग जाये। * * *

प्रातःकाल तू अपना उद्देश्य निर्धारित कर; और रात्रि में स्वयं से प्रश्न कर कि तूने मन, वचन और कर्म से किस तरह का व्यवहार किया है; कहीं ऐसा तो नहीं कि तूने अक्सर इनके माध्यम से परमात्मा और अपने पड़ोसी दोनों के प्रति अपराध किया है। *—अनाम-अज्ञात*

कर्मकाण्ड एवम् योग

पूर्णचन्द्र पन्त

भारतीय संस्कृति अनादिकाल से ही कर्मकाण्ड से अनुप्राणित रही है। कर्मकाण्ड का आधार वेद है। वेदों में साधना के तीन भाग किये गये है :— **कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासना** काण्ड इनमें से कर्मकाण्ड का भारतीय जनजीवन में विशेष महत्व है। क्योंकि हिन्दुओं के सभी संस्कार और परम्परायें कर्मकाण्ड पर ही आधारित है। उपनिषदों में कर्मकाण्ड को कर्मयोग का ही एक अंग माना गया है और कहा गया है कि—कल्याण कामी मनुष्य को सभी प्रकार की कामनाओं को त्यागकर फल की इच्छा न रखते हुए निरभिमान होकर ईश्वर प्रीत्यर्थ ही शास्त्रों में विधान किये गये कर्मों को करना चाहिये। इस प्रकार निष्काम भाव से किये जाने वाले कर्म साधक को योगारूढ़ बनाकर उसकी मुक्ति के साधन बन जाते हैं। इसके विपरीत सकाम भाव से अहंकार पूर्वक किये गये यज्ञादि पवित्र कर्म भी उसके बन्धन के कारण बन जाते हैं। देवताओं और पितरों का पूजन, दर्श पौर्णमास आदि अठारह प्रकार के यज्ञ, पुराणों का पारायण, व्रत उपवास, वेदोक्त एवं तन्त्रोक्त मन्त्रों का जाप एवं पुरश्चरण ये सभी क्रियायें कर्मकाण्ड के अन्तर्गत गिनी जाती हैं। कर्मकाण्ड ये सभी क्रियायें मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के इच्छित भोगों को प्रदान करने में समर्थ होती हैं, किन्तु उसे परमेश्वर की प्राप्ति रूप शाश्वत सुख नहीं दे सकती। यदि कोई विवेकशील मनुष्य फल की इच्छा न रखते हुए ईश्वरार्पण बुद्धि से ईश्वर प्रीत्यर्थ ही उपरोक्त कर्मों को करता जाता है तो कालान्तर में पुण्य बढ़ जाने के फलस्वरूप उसे सिद्धसंगति और पवित्र योगमार्ग मिल जाता है। जिससे वह संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार योग सिद्धान्तों का पालन करते हुए की जाने वाली कर्मकाण्ड सम्बन्धी क्रियायें भोग के साथ—साथ अपवर्ग की दात्री भी हो सकती है।

अखिल ब्रह्माण्ड नियन्ता योगेश्वर श्रीकृष्ण ने इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए गीता में अपने मुखारविन्द से कहा है—

त्रैविद्या मां सोमपापूतपाता:
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिम् प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक
मश्नन्ति दिव्यान्दिविदेव भोगान।। (गीता ९/२०)

तीनों वेदों में विधान किये गये कर्मकाण्ड पर अतिशय प्रेम और श्रद्धा रखते हुए सकाम भाव से यज्ञादि पवित्र कर्मों को करने वाले सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष मुझ परमेश्वर को यज्ञों द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं। वे लोग अपने उन पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त करके वहाँ देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना:
गतागतं कामकामा लभन्ते।। (गीता ९/२१)

वे उस विशाल स्वर्ग लोक को भोगकर और पुण्य क्षीण हो जाने पर पुन: मृत्युलोक में ही प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में बताये हुए स्वर्ग के साधन रूप सकाम कर्मों का आश्रय लिये हुए भोगों की कामना वाले मनुष्य बार-बार जन्म-मृत्यु को ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण हो जाने पर पुन: मृत्यु लोक में आ जाते हैं।

योग का स्थान कर्मकाण्ड से बहुत ऊँचा है, गीता में कहा गया है—

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।

योग का जिज्ञासु अर्थात् योग में श्रद्धा रखते हुए उसकी प्राप्ति के लिये चेष्टा करने वाला एक साधारण-सा योग साधक भी कर्मकाण्ड से प्राप्त होने वाले इस लोक और परलोक के भोग जनित सुखों को पार कर जाता है। कर्मकाण्ड के समस्त फल उसे अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु वह उसकी आकांक्षा नहीं रखता। वह इन अनित्य सुखों की उपेक्षा करता हुआ सच्चिदानन्द परमेश्वर की प्राप्ति रूप स्थायी सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है। मरणोपरान्त उसे भी उत्तम स्वर्गलोक की प्राप्ति हो जाती है और वह दीर्घकाल तक स्वर्गादि उत्तम लोकों में वास करके और फिर इस मनुष्य लोक में पवित्र धनवानों अथवा योगियों के कुल में जन्म लेता है। पिछले जन्म में किये गये योगाभ्यास के संस्कारवश उसे जन्म से ही योग में रूचि होती है और वह यौगिक ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है और आनन्द के असीम सिन्धु परमेश्वर को पाकर आनन्द में ही निमग्न हो जाता है तथा कर्मबन्धन क्षीण हो जाने से वह आवागमन के चक्र से सदा-सदा के लिये छूट जाता है।

उपनिषदों में योग को मोक्ष का एकमात्र साधन बताया गया है। योगशिखोपनिषद् में कहा गया है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रिय:।
विना योगेन देहेन न मोक्षं लभते विधे।

मनुष्य चाहे ज्ञानी हो, विरक्त धर्मात्मा हो या जितेन्द्रिय हो किन्तु योग के बिना उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

योगतत्वोपनिषद का कथन है—कैवल्य रूपी परमपद योग से भिन्न अन्यान्य मार्गों का आश्रय लेने से प्राप्त नहीं हो सकता। कोरे शास्त्रज्ञान से भी परमात्मतत्व को नहीं जाना जा सकता। अत: मुमुक्षु को योगनिष्ठ होकर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

ब्रह्मविद्योपनिषद में कहा गया है कि परमार्थ के पथिक को योगप्राप्ति के निमित्त ही ज्ञानार्जन करना चाहिये, उसी में ही उलझे नहीं रहना चाहिये। जैसे—

उल्काहस्तो यथा कश्चिद् द्रव्यमालोक्य तं त्यजेत्।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत्।।

जिस प्रकार किसी अन्धेरे कमरे में रखी हुई वस्तु को मनुष्य हाथ में टार्च लेकर उसके प्रकाश की सहायता से ढूंढता है और जब उसे वांछित वस्तु मिल जाती है तब वह टार्च को एक ओर रख देता है। फिर उसे उसकी अपेक्षा नहीं रहती, इसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह ज्ञान द्वारा जानने योग्य तत्व परमेश्वर का साक्षात्कार करके फिर ज्ञान को भी छोड़ दे। **इस प्रकार ज्ञान भी योगारूढ़ता का साधन मात्र है, साध्य नहीं।**

कर्मकाण्ड में क्रिया की प्रधानता रहती है। ज्ञान और योग को उसमें महत्व नहीं दिया जाता तथा सभी कर्म इस लोक और परलोक के सुखों की कामना लेकर संकल्प पूर्वक किये जाते हैं। अतः संकल्प के अनुरूप ही वे फल के दाता होते हैं। इस प्रकार कर्मकाण्ड का मार्ग प्रवृत्ति मार्ग है। यह मार्ग मनुष्य के परम कल्याण का साधन नहीं है। यहाँ पाठकों के मन में यह प्रश्न पैदा होना स्वाभाविक है कि यदि कर्मकाण्ड परमार्थ का साधन नहीं है तो वेदों में, धर्म शास्त्र में एवं पुराणों में इसका विधान क्यों किया गया है ?

इसका उत्तर है। हमारे अनुभवी ऋषियों ने जन्म–जन्मान्तर से भटके हुए जीव को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाने तथा उसे मानव जीवन के वास्तविक लक्ष्य मोक्षद्वार पर पहुँचाने के लिये अधिकारी भेद से विविध साधन बताये हैं उनमें कर्मकाण्ड भी एक सहायक साधन है। यद्यपि मोक्ष का साधन योगमार्ग ही है। किन्तु बिना पुण्य के पहले तो योगमार्ग हर व्यक्ति को मिला ही नहीं करता और यदि मिल भी गया तो इस मार्ग में उसकी प्रगति भी उसके पुण्यों पर निर्भर करती है। विरले सौभाग्यशाली पुण्यात्मा ही अपने पूर्वार्जित पुण्यों के फलस्वरूप इस मार्ग के अनुगामी बना करते हैं। जबकि संसार के प्रत्यक्ष सुखों तथा स्वर्गादि लोकों के सुखों के प्रलोभन से जनसाधारण स्वाभाविक ही कर्मकाण्ड के मार्ग को अपना लेता है।

जिस प्रकार माता अपने बालक को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाने के लिये उसे कई प्रकार के प्रलोभन देती रहती है और उसे प्रगति के पथ पर आरूढ़ करा देती है। इसी प्रकार वेदों और धर्मशास्त्र में विधान किये गये कर्मकाण्ड का भी यही उद्देश्य है कि लोग मनमाने आचरण से हटकर मर्यादा का पालन करते हुए पूर्ण सदाचारी बन जायें और आत्म कल्याण के मार्ग में लग जायें।

इसके अतिरिक्त कर्मकाण्ड भी अष्टांग योग का एक बहिरंग साधन है। जिस प्रकार यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार ये योग के बहिरंग अंग है, उसी प्रकार कर्मकाण्ड को भी योग का एक बहिरंग अंग कहा जा सकता है। क्योंकि कर्मकाण्ड में शौच, तप, स्वाध्याय आदि नियमों का तथा आसन और प्राणायाम का पूरा–पूरा विधान किया गया है।

कर्मकाण्ड में शौच (शुचिता) पर विशेष बल दिया जाता है। योगशास्त्र के मतानुसार इस नियम का दृढ़ता पूर्वक पालन करने से साधक की अपने शरीर में अपवित्र बुद्धि होकर उसमें भी उसकी आसक्ति नहीं रह जाती और वह सांसारिक लोगों का संग नहीं चाहता। इस प्रकार वैराग्य के भाव पुष्ट हो जाने से वह समाधि में प्रवेश कर जाता है।

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को योगदर्शन में क्रियायोग के नाम से वर्णित किया गया है और उस क्रिया योग को अविद्यादि क्लेशों को दूर करने तथा समाधि सिद्धि का सरलतम साधन बताया गया है।

"द्वन्द सहनं तप:" इस परिभाषा के अनुसार सर्दी, गर्मी, भूख–प्यास आदि के जोड़े को सहन 'तप' कहलाता है। कर्मकाण्ड में विधान किये गये कृच्छ चान्द्रायण आदि कष्टसाध्य व्रत तथा अन्यान्य सैकड़ों प्रकार के व्रत–उपवासादि, ग्रीष्मकाल में पंचाग्नि का सेवन, काष्ठ मौन, आकार मौन, तीर्थाटन आदि क्रियायें उत्कृष्ट तप की परिचायक है। इसी प्रकार आत्मस्वरूप का बोध कराने वाले सद्ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन तथा मन्त्रों का जाप 'स्वाध्याय' कहलाता है। कर्मकाण्ड में मन्त्रों का जप एवं पुरश्चरण तथा वेद, उपनिषद, गीता, रामायण एवं पुराणों के अध्ययन एवं पारायण का पूरा–पूरा विधान किया गया है। अत: स्वाध्याय को कर्मकाण्ड का एक महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है।

इस प्रकार कर्मकाण्ड का मार्ग भी एक योगपरक मार्ग है किन्तु साधक की प्रगति उसकी श्रद्धा और भावना पर निर्भर करती है। कल्याण कामी व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने आपको कर्मकाण्ड तक ही सीमित न रखें। उससे आगे निकलने की चेष्टा करें। क्योंकि आत्मोत्थान का साधन योग ही है। क्योंकि–

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलप्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परमस्थानमुपैति चाद्यम्।। (गीता ८/२८)

अर्थात् वेदों में, यज्ञों में, तपों में, तथा दानों में जो–जो पुण्यफल कहे गये हैं योगी उन सभी पुण्य फलों से आगे निकलकर आदि स्थान परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

शिव संहिता में भगवान सदाशिव का पवित्र आदेश है:–

कर्मकाण्डस्य महात्म्यं ज्ञात्वा योगी त्यजेत्सुधी:
पुण्यपापमयं त्यक्त्वा ज्ञानकाण्डं प्रवर्तते।।
आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्य इति यच्छ्रुति:।
सा सेव्या तत्प्रयत्नेन मुक्तिदा हेतुदायिनी।।

कर्मकाण्ड के महात्म्य को जानकर योगी को चाहिये कि वह पुण्य और पाप दोनों को तृणवत् समझता हुआ कर्मकाण्ड का झमेला ही छोड़ दे और सदा ज्ञानकाण्ड में तत्पर रहे।

वेदों में जो यह कहा गया है कि आत्मा को सुनो, आत्मा को मनन करो। अर्थात् जो कुछ है वह आत्मा ही है। यह श्रुति वाक्य मुक्ति का दाता है, इसी का यत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये।

योग साधक के लिये कर्मकाण्ड का कोई महत्व नहीं रह जाता। मैत्रेयी उपनिषद में यहाँ तक कहा गया है–

पाषाण लोह मणिमृन्मयविग्रहेषु पूजा पुनर्जनन भोगकरी मुमुक्षो:।
तस्माद्यति: स्वहृदयमार्जनमेव कुर्याद्बाह्यार्चनं परिहरेदपुनर्भवाय।।

पत्थर, लोहा, मणि अथवा मिट्टी द्वारा निर्मित देव प्रतिमाओं की पूजा मोक्ष के अभिलाषी के लिये पुनर्जन्म और भोग प्राप्ति का कारण बन जाती है। इसलिये फिर से जन्म न लेना पड़े इस उद्देश्य से योगी को चाहिये कि वह ऐसी बाहर की पूजा त्यागकर अपने हृदय में ही परमेश्वर का पूजन करें।

* * *

किमस्ति योग:

(सप्तदशी श्रृंखला)

रचनाकार : **द्वारका प्रसाद शर्मा**, लखनऊ।

'किमस्ति योग:' शीर्षक से आरब्ध सत्रहवीं कड़ी के रूप में प्रस्तुत लेख में छः सूत्रों को लेकर यथापूर्व श्लोकबद्ध करते हुए भाषानुवाद सहित सुधी पाठकों व योगाभ्यासी साधकों के निमित्त श्री सद्गुरुदेव के कृपा–प्रसाद को अर्पण किया गया है।

(१) श्री गुरोश्चरणौ नत्वा, ध्यात्वा सौम्यमुखाकृतिम्।
लब्ध प्रसाद: पुनरहं, प्रारभे योगदर्शनम्॥

श्री गुरुदेव के चरणों को नमन कर तथा उनकी सौम्य मुखाकृति का ध्यान करते हुए, उन्हीं गुरुदेव की कृपाप्रसाद को प्राप्त कर मैं पुनः योगदर्शन को आरम्भ कर रहा हूँ।

(२) षट् सूत्राण्येव संगृह्य, महर्षेर्योगदर्शनात्।
पूर्ववत् श्लोकबद्धैः स्वैः व्याख्यातुमुद्य तोऽस्म्यहम्॥

महर्षि श्री पतंजलि के योग दर्शन के छः सूत्रों को लेकर स्वरचित श्लोकों में आबद्ध करते हुए मैं उनकी व्याख्या करने को तत्पर हो रहा हूँ।

सूत्र तदर्थ सहित–**द्रष्टा दृशिमात्र शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः**

उक्त सूत्र अर्थ सहित निम्न श्लोकों से प्रस्तुत किया जा रहा है।

(३) **द्रष्टा ज्ञानस्वरूपात्मा, दृशिमात्रानुभावक:**
निर्विकारोऽपि सन् ज्ञेयः, चित्तवृत्त्यनुशामि स:॥

द्रष्टा (ज्ञानस्वरूप आत्मा) जो देखने की शक्तिमात्र है, निर्विकार होता हुआ भी चित्तवृत्तियों के अनुसार देखने वाला है।

(४) **आत्मा द्रष्टेत्यभिहित: यावच्चित्तानुकारि स:।**
दृश्य सम्बन्धाद्विरहित:, विशुद्धात्मा कथ्यते तदा॥

जब तक यह जीवात्मा चित्त वृत्तियों के अनुरूप रहा करता है अर्थात् अपने असली स्वरूप में स्थित नहीं हो जाता तभी तक द्रष्टा संज्ञा है। दृश्य का सम्बन्ध न रहने पर फिर द्रष्टा नहीं रहता। फिर तो यह चेतनमात्र सर्वथा शुद्ध निर्विकार है।

ननु दृश्यस्य प्रयोजन किमर्थं तदग्रिमे सूत्रे स्पष्टीक्रियते।

तब इस दृश्य का क्या प्रयोजन है, इसे ही आगे के सूत्र में भगवान् पतंजलि स्पष्ट करते हैं—

सूत्र तदर्थसहितम् **—तदर्थ एव दृश्यस्याऽत्मा।**

(५) एतत्सर्वं दृश्यजातं, द्रष्टे पुरुषाय वै कृतम्।
दत्वाऽपवर्गः पुरुषं, द्रष्टुः कार्यं न शिष्यते।।

उस द्रष्टा पुरुष के लिये ही दृश्य का स्वरूप है। पुरुष को अपवर्ग देने के बाद दृश्य का कोई काम बाकी नहीं रहता। उसका नाश हो जाना चाहिये। अगले सूत्र में यही प्रतिपादित किया गया है।

एतस्य क्षयमावश्यकं तदेव प्रतिपादितं भगवता महर्षिणा सूत्रेऽग्रिमे सूत्रं तदर्थसहितम्—कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्य साधारणत्वात्

(६) कृतार्थं प्रति तन्नष्टं, नैव नष्टं तु सर्वथा।
य तो दृश्यं तु तत्सर्वं, इतरेभ्यश्च विद्यते।।

जिसका भोग अपवर्ग पूरा होने का उस कृतार्थ पुरुष के प्रति नष्ट होने पर भी वह दृश्य नष्ट नहीं होता। क्योंकि वह दूसरों के लिये भी समान है।

संयोगस्य स्वरूपमाख्यायतेऽग्रिमे सूत्रे—

संयोग का स्वरूप अगले सूत्र में बता रहे है।

सूत्रं तदर्थ सहितम्—**स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः।**

स्वशक्ति (प्रकृति) और स्वामिशक्ति (पुरुष) इन दोनों के स्वरूप की प्राप्ति का जो कारण है, वह संयोग है। इसका श्लोक अधस्तन है।

(७) प्रकृतेः स्वामिशक्तेश्च, स्वरूप प्राप्ति कारणम्।
संयोग संज्ञाऽभिहितः भगवता श्री महर्षिणा।।

(८) चित्तं तथा दृश्यभूतं, पुरुषाधिकृतं च तद्।
पुरुषोऽधिपतिस्तस्य, तदेवोक्तं महर्षिणा।।

चित्त और यह सारा जड़ दृश्य पुरुष का अधिकृत पदार्थ कहा है और पुरुष को इसका स्वामी कहा है।

(९) दृश्यस्य पुरुषस्यापि, प्राप्तिरपवर्ग एव हि।
हेतुः संयोग उभयो, रभीष्टं तन्निराकृतिः।।

स्वशक्ति (दृश्य) के स्वरूप की उपलब्धि जो अपवर्ग रूप है और स्वामिशक्ति (पुरुष) के स्वरूप की उपलब्धि जो अपवर्ग रूप है, उनके स्वरूप की उपलब्धि का कारण संयोग है, अर्थात् संयोग हटाने के लिये स्वशक्ति और स्वामिशक्ति के स्वरूप की उपलब्धि की जाती है।

(१०) स्वशक्तयैव समाधिस्तु, सम्प्रज्ञातो ह्यवाप्यते।
स्वामिशक्त्या तया चैव, असंप्रज्ञाधिरिष्यते॥

स्वशक्ति सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, स्वामिशक्ति असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा उपलब्ध की जाती है।

(११) दृश्यस्य या तु चित्तस्य, प्रद्युर्वाऽत्मन एव च।
भोग्य भोक्तृत्व सम्बन्धः, आसक्तिस्तस्य कारणम्॥

दृश्य—द्रष्टा अर्थात् चित्त और पुरुष की जो आसक्तिपूर्वक भोगत्व भोक्तृत्व भाव से सम्बन्ध है, वह संयोग है।

सूत्रेऽग्रिमे किं कारणं संयोग इति विवृण्वते

अगले सूत्र में संयोग का कारण बताते हैं।

सूत्रं तदर्थसहितम्—तस्य हेतुरविद्या॥

उस संयोग का कारण अविद्या है।

(१२) अविद्या हेतुरस्यास्ति, तच्चोक्तं पूर्वसूत्रकैः।
मिथ्याज्ञानमविद्याय, भगवता श्री महर्षिणा॥

इस अदर्शन रुपी संयोग का कारण मिथ्याज्ञान, अविद्या है जो भगवान् पतंजलि द्वारा पूर्व सूत्रों में स्पष्ट किया गया है।

(१३) यावदविद्या संस्कार, वर्तते मनुजेषु वै।
भवबन्धन मुक्तिस्तु, तावत्कालमसम्भवा॥

जब तक अविद्या का संस्कार बना रहता है तब तक आवागमन का बन्धन नहीं छूटता।

सूत्रेऽग्रिमे अविद्यायाः कारणभूतं यत्संयोगं तस्य 'हानं' कैवल्यपदेन निर्दिशति भगवान् पतंजलिः।

अगले सूत्र में भगवान् पतंजलि 'हान' अर्थात् अविद्या के कारण संयोग के नाश को, जो कैवल्य है, कहते हैं।

सूत्रं सूत्रार्थ सहितम्— तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्

(१४) यथार्थज्ञाने सत्येव, बोधः प्रकृतिरात्मनोः।
अविद्या नाशयत्याशु, गदितः श्रमिहर्षिणा॥

यथार्थ ज्ञान पर प्रकृति पुरुष के स्वरूप का बोध होता है और अविद्या का नाश हो जाता है।

(१५) सत्यभावेऽ विद्यायाः, संयोगाभाव एव हि।
संयोगाभावो हानोऽस्ति, हानो दुःख विनाशनम्।।

अविद्या का अभाव होने पर अविद्या के कार्य (संयोग) का अभाव हो जाता है। संयोग का अभाव ही 'हान' है, अर्थात् दुःख का नाश है, क्योंकि दृश्य का संयोग ही दुःखरूप है।

(१६) यावदेव हि सम्बन्धम्, पुरुषस्त्यजति यत्क्षणात्।
प्रधानाच्चैव दृश्याच्च, भोगाद्विरमते तदा।।

जब पुरुष प्रधान तथा दृश्य से रहित हो जाता है तब भोग रहित हो जाता है।

(१७) भोगैः संयुतो यावत्, भुंक्ते दुःखानि भोगतः।
दुःखनाशस्तु परमं, ज्ञानं कैवल्यमुच्यते।।

जब तक भोगों से संयुक्त रहता है तब तक भोगादि से दुःख ही होता है। दुःख नाश ही परम ज्ञान कैवल्य है।

(१८) यल्लिखितं विवृतं यच्च, श्री गुरुणां प्रसादतः।
समर्प्य पादयोः सर्वं, विरमामि नमामि च।।

श्री सद्गुरुदेव के प्रसाद–प्रताप से जो कुछ लिखित व व्याख्यादित है उस सबको श्री गुरु चरणों में ही समर्पित कर मैं विराम करता हूँ तथा चरणारविन्दो में नमन करता हूँ।

मेरा यह विश्वास है कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण उसके नागरिकों के निर्माण पर निर्भर करता है और नागरिकों का निर्माण तभी हो सकता है, जब हम यह देखें कि बच्चों के लिये क्या कुछ किया जा रहा है। शुरू के वर्षों में बच्चों में जो आदतें पड़ जाती हैं और बच्चे जिस तरह सोचने लगते हैं उसका सारे जीवन पर असर पड़ता है। इसीलिये मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि बच्चों पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाय। *—जवाहर लाल नेहरू*

जीवन और मृत्यु का रहस्य

ले. ब्रह्मचारी ओमप्रकाश, लखनऊ

इस संसार में दो तरह के मनुष्य होते हैं एक वे जो शरीर को ही आत्मा मानते हैं, शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा को भी नष्ट हुआ मानते हैं, दूसरे वे हैं जो शरीर को आत्मा नहीं मानते, आत्मा को शरीर से स्वतन्त्र मानते हैं उनकी समझ में शरीर नष्ट हो जाता है आत्मा नष्ट नहीं होती। आत्मा अमर है। शरीर और आत्मा ये दो अलग–अलग सत्ताएँ हैं। शरीर आत्मा नहीं है, आत्मा शरीर नहीं है। जन्म शरीर का होता है, मृत्यु भी शरीर की होती है। जो जन्मा है वही तो मरेगा। आत्मा अजन्मा है, और अमर है। आत्मा शरीर को केवल वस्त्र की तरह धारण करता है। शरीर का बचपन होता है, शरीर की जवानी होती है, और शरीर में ही बुढ़ापा आता है लेकिन शरीर की इन सब भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में जो सदा एक रूप बना रहता है वही तो आत्मा है। वही जो कहता है मेरा बचपन, मेरी जवानी मेरा बुढ़ापा जब व्यक्ति बूढ़ा होकर अत्यन्त दुर्बल एवं असमर्थ हो जाता है तब तो कहता है यह शरीर छूट जाय तो अच्छा है। वह कौन है ? कौन इस जीर्ण–शीर्ण शरीर से तंग आकर इसे छोड़ देना चाहता है ? क्या शरीर ही शरीर को छोड़ देने को व्याकुल होता है। जो इसे छोड़ देना चाहता है वही तो आत्मा है। मृत्यु उसकी नहीं शरीर की होती है। इस मृत्यु और जन्म के यथार्थ रहस्य को योगेश्वर श्री कृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र के मैदान में समझाया था। भगवान ने कहा–हे अर्जुन शरीर के नाश से जीवन का नाश नहीं होता। यथार्थ तथा अन्तिम सत्ता जीवन की ही है मृत्यु की नहीं। जीवन का स्रोत आत्मा है, शरीर नहीं। शरीर मरता है, आत्मा अमर है। यह शरीर शस्त्र से छिदता है, अग्नि से भस्म होता है, पानी से गलता है तथा वायु से सूख जाता है किन्तु इस शरीर में रहने वाली आत्मा को कोई शस्त्र छेद नहीं सकता, आग इसे जला नहीं सकती, जल इसे गला नहीं सकता, वायु इसे सुखा नहीं सकती। आत्मा नित्य है, सनातन है। आत्मा के लिए मृत्यु अयथार्थ है। आत्मा में तो अखण्ड जीवन ही जीवन है। जब यह शरीर पुराना हो जाता है अथवा जीर्ण शीर्ण हो जाता है तब देह को वस्त्र की तरह धारण करने वाला यह आत्मा पुराने शरीर को छोड़ देता है और नये शरीर को धारण कर लेता है। आत्मा न जीर्ण होता है न शीर्ण होता है।

कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को मृत्यु तांडव–नृत्य करती हुई दीखने लगी तब अर्जुन मृत्यु के इस भयंकर रूप की कल्पना करके कांप उठा। अर्जुन की इस प्रकार की गंभीर स्थिति को देखकर श्री कृष्ण ने मृत्यु के रहस्य को खोलते हुए दूसरे अध्याय में इस प्रकार कहा–"हे अर्जुन जिस आत्मा से मेरा तुम्हारा सबका शरीर व्याप्त है, वह अविनाशी है। इस अव्यय आत्मतत्त्व का कोई भी विनाश नहीं कर सकता। यह

जो दीख रहा है वह शरीर है, वह न दीखने वाला जो आत्मा है वह इस शरीर का स्वामी अशरीरी है। उस अशरीर के साधन का अन्त होता है, उसका अन्त नहीं होता। आत्मा के विषय में जो यह समझता है कि यह मरता है या जो यह समझता है कि यह मारता है, ये दोनों ही सच्चाई को नहीं समझते। आत्मा न तो किसी के द्वारा मारा जाता है न वह किसी को मारता है। मृत्यु की तो हे अर्जुन कोई सत्ता नहीं। जिसको लोग मृत्यु कहते है, वह तो आत्मा को नया चोला धारण करना है।

जीवन व मृत्यु दो स्वतन्त्र सत्ताएं नहीं है, जैसा कि हम लोग समझते है। यथार्थ सत्ता जीवन की ही है, मृत्यु तो आगामी जीवन में प्रवेश करने का द्वार है। हम मर गये तो क्या कह सकते है कि जीवन सत्ता न रही। जीवन की यथार्थ सत्ता है तभी हमें मृत्यु की प्रतीति होती है। मृत्यु जीवन के बिना रह नहीं सकती लेकिन जीवन का अस्तित्व मृत्यु के बिना भी है। मृत्यु के अभाव का नाम जीवन नहीं है, क्योंकि मृत्यु के बिना जीवन रह सकता है। क्या आप समझते है कि राम मर गये ? कृष्ण मर गये ? बुद्ध मर गये ? महावीर मर गये ? महात्मा गाँधी मर गये ? नहीं ! वह आज भी है। मूर्ति के रूप में चित्रों के रूप में। आज से लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व श्री कृष्ण ने मथुरा में अवतार लिया था। उस समय श्री कृष्ण का शरीर था आज उनका शरीर नहीं है, उनका नाम है उनका धाम है। इसी तरह श्री राम ने अयोध्या में आज से लगभग ९ लाख वर्ष पूर्व अवतार लिया था। उनका भी शरीर आज नहीं है लेकिन जन–जन के मुंह पर उनका नाम है। राम और कृष्ण की मूर्ति बनाकर उनके अस्तित्व को लोग आज भी कायम रखे हुए हैं। आज भी उनकी पूजा की जाती है उनकी चर्चा की जाती है। और इतना ही नहीं, जब तक यह पृथ्वी रहेगी उनका नाम भी रहेगा। ये अवतारी पुरुष मर कर भी आज अमर हैं और इन महापुरुषों के रूप में अमर आत्माओं से जिन–जिन सन्त महात्माओं ने सम्बन्ध स्थापित किया है अथवा करेंगे वह भी उनके साथ–साथ ही अमर हो जायेंगे।

मीरा, सूर, तुलसी, वाल्मीकि आदि ऐसे ही महापुरुष है कि जिनका नाम भी तभी तक रहेगा जब तक रामकृष्ण का नाम रहेगा। इनको कोई भूल नहीं सकता, इनको कोई मिटा नहीं सकता, इनको कोई मरा हुआ भी नहीं कह सकता। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

राम का नाम लेकर जो मर जायेंगे।
वो अमर नाम दुनिया में कर जायेंगे।।

योगी श्री अरविन्द ने गीता प्रबोध में इस प्रकार कहा है कि साधारण लोग आत्मा के अमर होने का अर्थ ये समझते हैं कि शरीर मरण धर्मा है आत्मा शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होती है–यह आत्मा की अमरता का अर्थ है। योगी श्री अरविन्द कहते हैं कि गीता जब आत्मा की अमरता की बात करती है तब वह इतनी साधारण सी बात नहीं कहती, अमरता शब्द का प्रयोग करते हुए गीता एक असाधारण बात कहती है वह क्या है ? गीता कहती है कि जो साधक अपरा प्रकृति से अपना सम्बन्ध काटकर परा–प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है वह अमर है उसको स्वर्ग और प्रलय व्यथित नहीं करते–

'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च'(१४–२)

आत्मा अमर तो सबका ही है उस प्रकार की अमरता का वर्णन यहाँ नहीं है, यहाँ वर्णन उस अमरता का है जो अपरा प्रकृति से सम्बन्ध तोड़कर परा–प्रकृति के साथ सम्बन्ध। जोड़ने से होती है इसी अवस्था को गीता ने परा सिद्धि कहा है। श्री अरविन्द का कहना है कि गीता इस सृष्टि को ब्रह्म का ही विस्तार मानती है। ब्रह्म के दो रूप हैं– **'अपरा–प्रकृति और परा–प्रकृति'** अपरा प्रकृति तो यही संसार है, परा प्रकृति उसका अनादि निर्गुण रूप है। अपरा तथा परा के अतिरिक्त एक तीसरा तत्व है जिसे 'जीव' कहते हैं। यह जीवन गीता के अनुसार ब्रह्म का ही अंश है– **'ममैवांश: जीवभूत:'** (१५–६) मेरा ही अंश जीव हुआ। ये जीव ब्रह्म का अंश है। अर्थात् परा प्रकृति का अंश है। अंश तो वह परा प्रकृति का है, परन्तु बंधा हुआ वह अपरा प्रकृति के साथ है।

जीव के अपरा प्रकृति के साथ बंधे होने का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यह है कि अपरा प्रकृति के जो सत्व, रज, तप ये तीन गुण हैं उनके साथ जीव बंधा हुआ है। असल में तो वह ब्रह्म की परा प्रकृति का अंश है जब वह परा प्रकृति का अंश है तब उसे अपरा के बन्धन से छुड़ा कर परा के साथ मिलाने का प्रयत्न करना है– इसी का नाम पुरुषार्थ है। अपरा त्रिगुणात्मक है, परा त्रिगुणातीत है। जब जीव को अपरा से स्वयं को छुड़ाकर परा से मिलना है तब यही तो कहना होगा कि उसे त्रिगुणातीत होना है। श्री अरविन्द के कथनानुसार त्रिगुणातीत की इस अवस्था को प्राप्त करने पर जीव को 'कूटस्थ' कहा जाता है। यह त्रिगुणातीत होना ही अमरता है, परा सिद्धि है–त्रिगुणातीत का अर्थ हुआ तीन गुणों की प्रकृति से निकल कर ब्रह्म के अंश जीव का ब्रह्म के साथ मिल जाना। देह में ब्रह्म भी है, जीव भी है, परन्तु ब्रह्म देह के सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से बंधा हुआ नहीं है, लेकिन जीव इनसे बन्धा हुआ है। जीव का अपने को इनसे छुड़ा लेना ब्रह्म की सधर्मता को पा लेना है। इसी स्थिति को गीता में :–

'मम साधर्म्यम् आगता:' (१४–२) कहा है।

इस साधर्म्य को पा लेने का अर्थ क्या हुआ ? इसका अर्थ हुआ जीव का अपरा से निकलकर परा की तरफ पीछे लौट जाना और अपरा प्रकृति में भटकना छोड़ देना।

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि संसार में किसी वस्तु का नाश नहीं होता सिर्फ रूप बदल जाता है। यह विज्ञान का अटल नियम है। हम शरीर के नष्ट होने को उसकी मृत्यु कहते हैं वह भी शरीर के तत्वों का रूपान्तरित हो जाना है। शरीर पाँच तत्वों से बना है मरने पर जब ये पाँचों तत्व पार्थिव तत्व पृथ्वी में जलीय तत्व जल में, अग्नितत्व अग्नि में, वायुवीय तत्व वायु में तथा आकाशीय तत्व आकश में चला जाता है। शरीर तो परमाणुओं के संयोग से बना है इसलिए मृत्यु के समय परमाणुओं का संयोग जाता रहता है, वियोग हो जाता है परमाणु नष्ट नहीं होता। इस दृष्टि से परमाणु रूप में शरीर भी नित्य है, अमर है। जैसे शरीर का रूपान्तर होता है वैसे आत्मा का भी रूपान्तर होता है। एक शरीर को छोड़कर वह दूसरा शरीर धारण कर लेता है शरीर के रूपान्तर को मृत्यु कहा जाता है। और आत्मा के रूपान्तर को हम 'पुनर्जन्म' कहते हैं।

***

योग साधन कक्षा में श्री महाप्रभुजी की विलक्षण कृपायें

अवनीश कुमार भटनागर, सहारनपुर

हमारे एक पुराने परिचित काफी समय से हमसे बार-बार यह कहते रहे कि योगासनों की कक्षा हमारे यहाँ भी प्रारम्भ करें ताकि हम लोग भी योग के विषय में जानकारी एवं लाभ ले सकें। परन्तु मेरे मन में बार-बार यह बात आती थी कि वैसे ही तो कोई श्री महाप्रभु जी के कल्याण मय मार्ग पर चलने की जिज्ञासा नहीं, इतनी लगन से प्रकट करता है, इनका ऐसा कौन-सा उत्तम संस्कार जाग गया है जो यह श्री महाप्रभुजी के योग साधन एवं उनके साधना पथ और करुणामय आनन्द कन्द श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। बहुत याद करने पर मुझे लगभग १० वर्ष पूर्व सन् १९८९ की एक घटना स्मरण हो आई। लगभग १० वर्ष पूर्व करुणामय श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन महाप्रभुजी मुझ अधम की कुटिया पर स्थूलरूप से शायद अन्तिम बार पधारे थे और जब वह यहाँ से प्रस्थान कर रहे थे तो उपरोक्त हमारे परिचित महाशय जी सामने से आ रहे थे, महाशयजी श्री सद्गुरुदेव भगवान के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे केवल मात्र आनन्दकन्द श्री चन्द्रमाहेन महाप्रभुजी की मनोहारी सिद्धेश छवि और मुखमण्डल पर फैले दिव्य तेज को देखकर महाशय जी ने तुरन्त सड़क के बीच में ही श्री चरणों में झुककर प्रणाम किया और श्री सद्गुरुदेव भगवान ने भी कर कमल उठाकर आशीर्वाद दिया और आगे बढ़कर गाड़ी में बैठकर गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया। बात आई गई हो गई परन्तु समय आने पर १० वर्ष पश्चात् श्री सद्गुरु देव जी का वह कल्याणप्रद आशीर्वाद महाशयजी और न जाने कितने योग जिज्ञासुओं का कल्याण करने का कारण बनकर फलीभूत हो रहा है यह हमारे निरंतर देखने में आ रहा है।

योग साधनों की कक्षा लगाने के लिये सर्वप्रथम मैं सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी एवं योगाधिपति श्री चन्द्रमोहनजी से आज्ञा लेने श्री महाप्रभुजी द्वारा स्थापित श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश जो सिद्धियों का धाम है और योगीश्वर का योग पीठ है वहाँ पर गया और प्रार्थना की कि हे दयानिधान आपकी परम कृपा एवं आज्ञा से योग साधनों की कक्षा का आयोजन किया है आप उसमें नित्य पधारने की कृपा करें, आपकी दिव्य उपस्थिति एवं शुभ संकल्प से हम सब अधम जीवों का कल्याण हो यह विनम्र प्रार्थना आपके श्री चरणों में बार-बार है। इसके पश्चात् एक सितम्बर से एक दिसम्बर तक परम करुणामय की दिव्य उपस्थिति में योग साधना की कक्षा चलाई गई। इसमें महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी की कृपायें किस-प्रकार साधकों पर बरसी व लोगों को आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के योग साधनों से किस-किस प्रकार लाभ पहुँचे यह सब बताने का प्रयास किया है।

प्रातः ६.३० बजे से ८.३० बजे तक योग साधनों की कक्षा का समय रखा गया। इसमें सबसे पहले अनादि सिद्ध योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी द्वारा परम कृपाकर जगत को दिया गया अलौकिक उपहार जीवन तत्व साधन कराये जाते। इसके पश्चात १९ अन्य योगासन जो रोगियों की आवश्यकतानुसार

कराये जाते इस कक्षा में नेति क्रिया के चारों प्रकार एवं कुंजल और प्राणायाम में भस्त्रिका एवं शीतली व नाड़ी शोधन प्राणायाम आवश्यकता को देखते हुये कराये गये। फिर ध्यान का भी अभ्यास कराया जाता। कक्षा में आनन्दकन्द श्री महाप्रभुजी एवं श्री सद्गुरुदेव जी की विलक्षण लीलाओं को बताने के लिये पन्द्रह मिनट अलग से रखे गये। योग की कक्षा में दिनोदिन आश्चर्य देखने में आते रहे। सतसंग का समय १५ मिनट रखा गया था जो बढ़ कर घंटे को भी पार कर गया। किसी साधक का मन उठने को नहीं करता था। इस कैम्प में रोगी व्यक्ति भी निरन्तर आते थे जैसे सरवाइकल स्पोण्डलाइस्टिस, श्वांस, गठिया, शरीर दर्द, कमर दर्द, हाई ब्लड प्रेशर, पेट के रोगी, शुगर के मरीज जिनकी ब्लड शुगर ४०० थी एक सप्ताह के अभ्यास से घटकर २०० हो गई और यूरिन निल ही हो गई।

भारतीय योग संस्थान के साधकों ने भी कैम्प में आकर योग साधन किये और सराहनीय प्रयास बताकर जीवन तत्व साधनों की विलक्षणता को माना। धीरे–धीरे सभी साधकों की श्री महाप्रभुजी एवं श्री सद्गुरुजी जो परिपूर्ण सिद्धेश हैं के पावन श्री चरणों में श्रद्धा और बढ़ी तो एक सतसंग का आयोजन करने का प्रस्ताव साधक मण्डल ने रखा। हमें तो श्री प्रभुजी की आज्ञापालन करने का एक और अवसर प्राप्त हो गया, यह सोचकर शरीर रोमान्चित हो गया। सतसंग का आयोजन किया गया बहुत धूमधाम से सतसंग हुआ इसमें जो लोग श्री महाप्रभुजी एवं श्री सद्गुरुदेव जी से बिलकुल अपरिचत थे उन लोगों ने भी श्री करुणा निधान सद्गुरुदेव महाप्रभु की उपस्थिति को माना और उनकी प्रभुता को स्वीकारा और अति विलक्षण घटना तो यह रही कि सतसंग के समय लगभग ३ फुट लम्बा एक काला नाग सतसंग को सुनने आया। अक्स्मात ही किसी कार्यवश कमरा खोला गया तो वहाँ सतसंग श्रवण करते हुए नाग को देखकर डरना भी स्वाभाविक था पर नाग ने किसी को कुछ नहीं कहा और अचानक ही इतना लम्बा नाग गायब भी हो गया किसी को कुछ पता भी नहीं चला। सतसंग की समाप्ति के पश्चात् भी लोगों का मन तृप्त नहीं हुआ। उन्होंने जल्दी से दूसरे सतसंग का आयोजन भी किया उसके अन्दर भी श्री महाप्रभुजी की विलक्षण कृपाओं का साक्षात्कार उपस्थित जनों को हुआ।

सतसंग के पश्चात् भी योग की कक्षा अनवरत चलती रही साधकों को शारीरिक लाभ, मानसिक लाभ, श्री महाप्रभु रामलाल जी एवं श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के दर्शन, मन्दिर तीर्थों के दर्शन, देवताओं के दर्शन, नित्य होते रहे और श्री महाप्रभुजी एवं श्री सद्गुरुदेव जी की उपस्थिति का अहसास भी बराबर बना रहा क्योंकि कक्षा चलते में गुलाब एवं चन्दन की खुशबुओं का आना कि जैसे श्री करुणा निधान आकर यह चैक कर रहे हैं कि बच्चे सुचारू रूप से कार्य को कर रहे हैं न और सन्तुष्ट होकर प्रसन्न मुद्रा में आशीर्वाद की पुष्प वृष्टि करने से यह महक वातावरण में फैल रही है। ज्यों–ज्यों कैम्प का समय समाप्ति की ओर बढ़ने लगा सभी साधकों का मन यह मानने को नहीं करता था कि कैम्प को समाप्त कर दिया जाये। सभी साधकों के मन में श्रद्धा श्री करुणा निधान के प्रति बढ़ती ही जा रही थी इसी के परिणाम स्वरूप एक साधिका को श्री प्रभुजी एवं श्री सद्गुरुदेव जी और श्री गणेश जी के दर्शन हुये उन्होंने यह बात बताई। इसका वर्णन आमतौर पर किसी से नहीं करना चाहिये। यह तो उन परम करुणा निधान की अहैतुकी कृपा है जो उन्होंने दर्शन दिये और साथ में ध्यान करने के लिये श्री गणेश जी के भी दर्शन करा दिये, एक प्रकार से उन्होंने उनको दीक्षा दे दी। इसलिये निरन्तर गणेश जी का ध्यान कर वह आज भी उस बात का पालन कर रही हैं।

***

योग से ही वेदान्त की उत्पत्ति

ले. डा० स्वामी केशवाचार्य, चान्दोद (बड़ौदा)

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती "**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**"। ज्ञान से ही मुक्ति होती है— "**ज्ञानान्मुक्तिः**"॥ इसके विपरीत अज्ञान से बन्धन होता है। "**बन्धोविपर्ययात्**"। अतः सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि कैवल्य पद की प्राप्ति केवल ज्ञान से ही होती है। "**ज्ञानादेव हि कैवल्यम्**"। ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक शास्त्रजन्य और दूसरा विवेकजन्य। इनमें शास्त्रजन्य ज्ञान निम्न श्रेणी का है। क्योंकि—"**न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया**"। (दीपक की बात करने से ही अन्धकार कभी दूर नहीं हो सकता)। इस उक्ति के अनुसार केवल शास्त्रजन्य ज्ञान कभी मोक्ष का साधक नहीं हो सकता। परन्तु जो योगांगों के अनुष्ठान से होने वाला विवेकजन्य ज्ञान है वही मुक्ति मन्दि के द्वार के किवाड़ों को तोड़ने में समर्थ है। यह सभी शास्त्रों का सिद्धान्त है—श्री विष्णु पुराण में भी कहा गया है। कि—

आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तदुच्यते।
शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम्॥

६/५/६१॥

ज्ञान दो प्रकार का है—शास्त्रजन्य और विवेकजन्य इनमें शब्द ब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है। और परब्रह्म का ज्ञान विवेक जन्य है। विवेक की प्राप्ति का उपाय महर्षि पतंजलि योगदर्शन में बतलाते है—

"**योगांगानुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः**"।

इस सूत्र की व्याख्या यह है कि योग के साधन ही योगांग है। उनके अनुष्ठान से अर्थात् उत्साह और श्रद्धा के साथ परम पिता परमात्मा स्वरूप श्री सद्गुरुदेव जी की बतलाई हुई साधना के अनुसार उन योगांगो का सम्पादन करने से अशुद्धि का क्षय हो जाता है। यहाँ "अशुद्धि" शब्द से उस पंचपर्वा अविद्या को समझना चाहिये, जिसके द्वारा उत्क्रमण और गमनागमन का आश्रय लेकर जीव रहट के घड़ों की तरह इस संसार सागर में भ्रमण करता रहता है। ऐसी अविद्या रूप अशुद्धि का क्षय अर्थात् तिरोभाव (लोप) होता है, अथवा उसके बीज का दाह—सा हो जाता है, उसका बिल्कुल नाश नहीं होता। क्यों नहीं होता ? क्योंकि कारण का लय होने पर नाश होता है, जैसा कि—"**नाशोहि कारणलयः**" इस सांख्य दर्शन के सूत्र से सिद्ध होता है। तथा—

"**गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव प्रविशन्ति च**"।

महाभारत शा० पं० ३०५/२३

गुण गुणों से ही उत्पन्न होते और उन्हीं में लीन होते हैं। इस महाभारत के कथन से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। विज्ञान वेत्ताओं का कहना है कि ईश्वर की सृष्टि में किसी भी पदार्थ का आत्यन्तिक विनाश नहीं होता।

"**न नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावस्य तद्योगस्त द्योगादृते**"।

(सांख्य दर्शन १/१९)

नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाले पुरुष का

प्रकृति से संयोग के अतिरिक्त बन्धन नहीं होता। इत्यादि वचनों का कोई महत्व नहीं रह जाता। इस प्रकार पूर्वोक्त अशुद्धि का क्षय हो जाने पर ज्ञानदीप्ति होती है। जिसके द्वारा सजातीय और विजातीय वस्तुओं के विभागपूर्वक त्याज्य और ग्राह्य वस्तु जानी जाय वही ज्ञान है।

"सर्वे वै ज्ञानिनो लोके पशुपक्षीमृगादयः"।

संसार में पशु, पक्षी और मृग आदि जितने भी जीव हैं सभी ज्ञानी हैं।

—इस लोकोक्ति के अनुसार आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि के ज्ञान में आसक्त हुए सर्व साधारण जीवों में ज्ञान का सम्बन्ध नहीं मानना चाहिये। अपितु 'योगांगो के अनुष्ठान के बल से अविद्या लता का उच्छेद कर देने पर धीरे–धीरे जो आत्म स्वरूप की प्राप्ति होती है उसी ज्ञान को तत्वज्ञों द्वारा ज्ञान माना है। उसी ज्ञान की दीप्ति—अभिव्यक्ति अर्थात प्रकाश होता है। यदि कहा जाय कि ज्ञान का प्रकाश कब तक अभिव्यक्त होता है ? तो इसका उत्तर सूत्र में ही बतलाया गया है—

"आ विवेकख्यातेः"॥

अर्थात् जब तक विवेक की ख्याति अर्थात् पूर्ण तथा प्राप्ति न हो जाय।

"विवेकख्याति पर्यन्तं ज्ञयं प्रकृति चेष्टितम्।"

जब तक विवेक की ख्याति न हो जाय तब तक प्राकृतिक चेष्टा होती रहती है।

श्री पंचशिखाचार्य जी की इस उक्ति से भी यही बात सिद्ध होती है। विवेक उसको कहते है जिसके द्वारा ब्रह्म आदि के ज्ञान का विवेचन—अवधान अर्थात् निश्चय किया जाय।

अन्तर्यामी आत्मा निर्गुण होकर भी कूटस्थ होने के कारण एक रस है। और सत्वादि त्रिगुणमयी प्रकृति दर्पण के समान पुरुष का अनुसरण करती है। जिस समय वैराग्य सहित अष्टांग योग के अनुष्ठानरूप जल से इस प्रकृति रूप दर्पण को धो दिया जाता है उस समय अविद्या दर्पण में पुरुष का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है, जिससे यह पुरुष विवेक मयी ज्योति को प्राप्त कर लेता है। और तू प्रकृति है, मैं पुरुष हूँ। तू जड़ है, मैं चेतन हूँ। तू दृश्य है, मैं द्रष्टा हूँ। तू कर्त्री है, मैं अकर्ता हूँ। तू नाचने वाली है, मैं तेरा दर्शक हूँ। तू विकृत होती है, मैं निर्विकार हूँ। तू चंचलता है, मैं अचल हूँ, तू संघात रूपा है, मैं एक रूप हूँ, तू हृदय लता है, मैं लता से मुक्त हूँ। तू अन्दर रहने वाली है, मैं कूटस्थ हूँ। तू भ्रान्त है, मैं निभ्रन्ति हूँ। तू मुक्त होना चाहती है, मैं नित्य मुक्त हूँ।

—इत्यादि रूप से प्रकृति के दोषों को प्रस्फुटित करता है। इसके बाद पुरुष से संयोग होने पर भी लज्जित होकर घूंघट लटकायी हुई कुलबधू की तरह पुरुष से दैहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हाव–भाव और कटाक्षों का प्रदर्शन नहीं करती। इसी बात को श्रीमद्भागवत् महापुराण में कितने अच्छे ढंग से कहा गया है—

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः।
नेश्वरस्या शुभं, धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च॥

(३/२७/२४)

'जो उपभोग करके त्याग दी गयी है, जिसके प्रतिदिन दोष देखे जा रहे हैं। ऐसी वह प्रकृति अपनी महिमा में स्थित हुए ईश्वर (पुरुष) का अमंगल नहीं करती।'

इधर पुरुष भी उस विमल प्रकृति दर्पण में सरोवर के भीतर प्रतिबिम्बित हुए तट के वृक्षों की भाँति प्रतिबिम्बित होकर सम्पूर्ण ग्राह्य एवं त्याज्य वस्तुओं का संकलन करता हुआ निर्लेप अलाबू (तुम्बी) की तरह स्वभावत: केवल होकर भी योगाभ्यास से कैवल्य नामक आनन्द का अनुभव करता है, जैसा की श्रुति में भी कहा गया है कि—

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं,

तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम्।

तद्वात्मतत्वं प्रसमीक्ष्य देही,

एक: कृतार्थो भवते वीत शोक:॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद २/१४)

'जिस प्रकार दर्पण श्वेत मिट्टी (चूने) से मांजने पर शुद्ध होकर प्रकाश युक्त हो चमकने लगता है, उसी प्रकार जीव अद्वितीय रूप से आत्मतत्व का साक्षात्कार करके शोक रहित और कृतार्थ हो जाता है।' केवल शास्त्रीय ज्ञान रखने वाले वेदान्तियों की यही चरम समाधि है। परन्तु परब्रह्म की प्राप्ति तो विवेकजन्य ज्ञान से ही होती है। और विवेक होता है। अष्टांगयोग के अनुष्ठान से। योगाभ्यास के बिना कोई भी शुष्क वेदान्ती परब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकता है। जैसा कि कहा भी गया कि—

''निर्विकल्पकसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्वमवगम्यते ध्रुवम्।

अन्यथा चलतया मनोगते: प्रत्ययान्तर विमिश्रतं भवेत्॥

(विवेक चूडामणि ३६५)

'निर्विकल्प समाधि के द्वारा ही निश्चित रूप से ब्रह्मतत्व का स्फुट ज्ञान होता है, अन्यथा मन की चंचल गति के कारण वह ब्रह्म तत्व विजातीय प्रतीतियों से विस्मित हो जाता है।' परन्तु सदा ही इन्द्रियों का रस भोगने वाले धन और महलों में आनन्द मनाने वाले, सोने के कुण्डल पहनी हुई सुन्दरी रमणियों में राग रखने वाले, पुत्र, मित्र, क्षेत्र, स्त्री आदि से उदासीन न रहने वाले, व्यर्थ ही आत्मवाद पर विवाद करने वाले कपट भाव से गेरुए वस्त्र धारण करने वाले मिथ्याचारियों और अपने अन्त:करण में चण्डियों (मानिनी वनिताओं) का चिन्तन करने वाले नामधारी योगी, सन्यासी, विरागी, ब्रह्मवादी, परमहंस, कर्मयोगी, महात्मा आदि को निर्विकल्प समाधि की सिद्धि नहीं होती। इसलिए जो लोग—

''क्रियावानेव ब्रह्मविदां वरिष्ठ:''।

(मुण्डकोपनिषद ३/१/४)

क्रियावान ही ब्रह्म वेत्ताओं में अत्यन्त उत्तम है। इस श्रुति के रहस्य की अवहेलना करके धर्माचरण और समाधि से शून्य होकर ''मैं ब्रह्म हूँ'' **अहं ब्रह्मास्मि** ''यह आत्मा ब्रह्म है अयं आत्मा ब्रह्म' 'वह ब्रह्म तू है— **तत्वमसि**। इत्यादि वैदिक वाग्वेवता को अपना पेट पालने के लिए घर–घर बाँचते फिरते हैं। वे केवल शास्त्र का ज्ञान रखने वाले वेदान्ती सोचनीय है, विचारणीय है। क्योंकि वेद की ऋचा भी यही कहती है—

''यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति''

(ऋग्वेद १/१६४/३९)

यही नहीं श्रुति योग-रहस्य का भी उपदेश करती है।

''नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,

न मेधया न बहुनाश्रुतेन।

यमवैष वृणुते तेन लभ्य,

स्तस्यैष आत्माविवृणतेन तनूँ स्वाम्।।"

(मुण्डकोपनिषद ३/२/३)

केवल वेदों की व्याख्या, बुद्धि या अधिक शास्त्र अध्ययन से इस आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह आत्मा जिस पुरुष का वरण करता है उसके ही समक्ष यह अपने स्वरूप को प्रकट करता है।' तथा

"वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः,

संन्यास योगाद् यतयः शुद्धसत्वाः।

ते ब्रह्म लोकेषु परान्त काले

परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।"

(मुण्डकोपनिषद ३/२/६)

इस श्रुति का अभिप्राय यह है कि—वेदान्त सिद्धान्त के द्वारा संन्यासी को सम्बोधित कर भगवति श्रुति योग की महिमा प्रकट करती है,—जिसने संन्यास कर लिया है उस सन्य को ही यहाँ संन्यास कहा है। संन्यास शब्द में मतुप् प्रत्यय के अर्थ में 'अर्श आदिभ्योऽच्' (५/२/१२६) इस पाणिनिसूत्र से 'अच्' प्रत्यय हुआ है। इसलिए संन्यास का अर्थ है संन्यासी। श्रुति के संन्यास। योगात्' इस पद में सन्यास शब्द के सम्बोधन का रूप है। अर्थात् हे सन्यास ! हे सन्यासिन् ! योगात् अष्टांगयोग के अभ्यास से जिनके अन्तःकरण शुद्ध हो गये हैं— ऐसे प्रयत्नशील यति—योगी लोग लिंग देह का त्याग करते समय सर्वोत्तम अमर भाव को प्राप्त होकर ब्रह्म रूप लोक में मुक्त हो जाते हैं। पूर्वोक्त प्रक्रिया की सिद्धि के लिए श्रुति वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है— '**वेदान्त वेदान्त सुनिश्चितार्थाः।** वेदान्तों का जो विज्ञान है, उसे ही वेदान्त विज्ञान कहते हैं, उसमें ये अच्छी तरह निश्चित किये हुये सिद्धान्तभूत अर्थ हैं। तात्पर्य यह कि वेदान्ती संन्यासियों के ये ही सिद्धान्त हैं कि पूर्वोक्त सभी योगी योग से शुद्ध चित्त होकर लिंग शरीर का त्याग करते समय परम अमृत भाव को प्राप्त होकर मुक्त हो जाते हैं। यहाँ '**वेदान्त विज्ञान सविश्चितार्थाः** इस पद में बहुवचन का प्रयोग अत्यन्त आदर्श आदर प्रदर्शन के लिए है। स्मृति में भी पूर्वोक्त सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया गया है व समर्थन किया गया है—

"आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगाहते नहि"।

(स्कं० पु० का० खं० ४१/४२)

मुक्ति आत्मज्ञान से होती है और आत्मज्ञान बिना योगाभ्यास के नहीं होता है। इसलिए सम्पूर्ण योग से ही वेदान्त की उत्पत्ति होती है। **इसलिए शुष्क वेदान्त परिभाषा का अध्ययन छोड़कर योगाभ्यास में मन लगाना चाहिये।** फिर समय आने पर निश्चित रूप से अनायास योग से ही वेदान्त ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है।

इस राष्ट्र के ऋषियों ने, मुनि महर्षियों ने विशेष रूप से योग पर ही विशेष बल दिया है। क्योंकि योग के द्वारा ही पार ब्रह्म परमेश्वर का साक्षात तादात्म्य होता है। योग के द्वारा ही पूर्ण (ब्रह्म) सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। योग द्वारा ही परमात्मा श्री महाप्रभु जी के स्वरूप में आकर दर्शन देते हैं। योग के द्वारा ही श्री परमात्मा श्री सद्गुरूदेव जी के रूप में दर्शन देते हैं। अर्थात यह स्वयं सिद्ध है कि योग से ही सम्पूर्ण वेदान्त की उत्पत्ति होती है।

* * *

श्री प्रेमचन्द सविता पर कृपा

केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

हमारे एक आदरणीय गुरूभाई श्री प्रेमचन्द सविता हैं। ये बिठूर (कानपुर) के रहने वाले हैं एवं इस समय आई० आई० टी० कानपुर में सी० ए० के पद पर कार्यरत हैं। इसी प्रतिष्ठान में हमारे एक अन्य आदरणीय गुरूभाई भी टेक्निकल आफीसर के पद पर कार्यरत हैं जो स्वभाव से ही सरल एवं परोपकारी हैं। इसके साथ ही वे श्री प्रभु जी के (आराध्यदेव जी महाराज के) विशेष कृपा पात्र शिष्य हैं। घटनाक्रम जिसका उल्लेख इस लेख में किया गया है सन् तिरासी—चौरासी का है। उस समय भाई श्री प्रेमचन्द जी की तबीयत बहुत ही खराब चल रही थी। इन्हें बार—बार शौच जाना पड़ रहा था। पाचन शक्ति ने करीब—करीब कार्य करना बन्द कर दिया था, चलने फिरने में भी कठिनाई होती थी, उदासी एवं निराशा इनके मन और बुद्धि में बिल्कुल घर कर गयी थी या कम शब्दों में यह कहा जाय कि इनकी जीवनी शक्ति प्रायः समाप्त हो गई थी तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होती। उस समय इनकी शादी हुए मात्र कुछ वर्ष ही हुए थे एवं संतान के नाम पर मात्र एक बच्ची थी। इनकी माताजी का स्वर्गवास इनके बाल्यकाल में ही हो गया था एवं होश सम्भालते—सम्भालते इनके पिताजी भी चल बसे। सविता जी तीन भाई हैं एवं इनका नम्बर अन्तिम अर्थात् तीसरा है। इनके बड़े भाई साहब गाँव पर ही आयुर्वेदिक विधि से रोगों का निदान करते हैं।

भाई प्रेमचन्द जी को बाल्यकाल से ही सिद्धेश्वर, योगेश्वर एवं परमपिता परमेश्वर श्री महाप्रभु जी महाराज एवं आराध्यदेव जी महाराज के स्थूल दर्शन परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हुआ करते हैं एवं होश संभालते ही इनके मन में बात आयी कि मैं पंचाक्षरी मंत्र का जाप करूँ एवं इस अन्तर प्रेरणा से प्रेरित होकर इन्होंने पंचाक्षरी मंत्र का जप करना आरम्भ कर दिया। जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है। इन्होंने उसी प्रकार से अनजाने में ही पंचाक्षरी मंत्र का जप करना आरम्भ कर दिया था। परन्तु जैसे कि कलयुगी मन की दुर्बलता सबको ज्ञात है, उसी दुर्बलता से ये भी अछूते नहीं रहे एवं कठिन संस्कारों के भुगतान के कारण इनका अन्दर से आत्मविश्वास जाता—सा रहा एवं हीन भावना का इतना प्रभाव बना कि गैर तो गैर, अपने भी डरावने एवं अनिष्टकारी प्रतीत होने लगे। उमंग, उत्साह एवं उत्तेजना तीनों इनके जीवन से अलहदा हो चुके थे। इष्ट, मित्र एवं रिश्तेदारों की दृष्टि में ये दया के पात्र बन गये थे। इनके श्वसुर जी, जो प्राइमरी पाठशाला में प्राध्यापक थे एवं जिनकी लाडली बेटी अरूणा के साथ इनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ था, वे भी इनके कष्ट से महान दुःखी थे। इन्होंने इलाज की प्रचलित तीनों पद्धतियों अंग्रेजी, आयुर्वेदिक एवं होमियोपैथिक से अपना उपचार कराया परन्तु रोग घटने के बजाय बढ़ता ही गया। एक दिन इनके श्वसुर जी ने जब इनकी

यह दशा देखी तो इन्हें यह सुझाव दिया कि दवा तो तुम बहुत करा चुके, अब चलो तुम्हें दुआ से ठीक करा दें। वे इनको लेकर एक मौलवी के पास गये, उसने अपने हिसाब से अल्लाह से इनके ठीक होने की इबादत की, इनके लिये दुआ वगैरह की, और एक जन्तर बनाकर इनकी दाहिने बाजू पर बांध दिया एवं बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब तुम होमियोपैथिक इलाज कराओ, तुम अवश्य ही ठीक हो जाओगे। यद्यपि इनको मौलवी जी की बातों पर बिल्कुल ही विश्वास नहीं हुआ परन्तु इन्होंने अपने ठीक होने के लिये वह सब कार्य कर डाले जो मौलवी ने बतलाये थे। परन्तु फिर बैतलवा डाल की डाल वाली कहावत चरितार्थ हुई एवं इनके रोग ने और अधिक विकराल रूप धारण कर दिया। इन सब विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी इन्हें दोनों परसत्ताओं (गुरूदेव एवं दादा गुरूदेव) का बीच–बीच में स्वप्न द्वारा दर्शन होता रहा।

रोग भोगते–भोगते मनुष्य जब बिल्कुल ही परेशान हो जाता है तो उसके अन्दर यह भावना आती है कि अब यह कष्ट सहा नहीं जाता, क्यों न इस शरीर का अन्त ही कर दिया जाय। इस रोग से होने वाले महान कष्ट से छुटकारा मिल जायेगा। यही भावना श्री प्रेमचन्द जी के अन्दर भी बलवती हो गयी, एवं एक दिन इन्होंने अपना शरीर त्याग करने की बिल्कुल नीयत ही बना ली। एक कमरे में ये तख्त पर सोये थे एवं उसी के पास इनकी पत्नी अपनी छोटी बिटिया के साथ सोयी थी। रात के करीब एक बजे ये अपने तख्त से उठे एवं सोचा कि लघुशंका करके आत्महत्या के लिये घर से बाहर चले। जब ये लघुशंका करने जा रहे थे तो इन्हें स्पष्ट सुनायी दिया कि दो पुरूष आपस में बात कर रहे हैं। उन्हें यह स्पष्ट ज्ञान हो गया कि बात करने वाले इन दो पुरूषों में, उनके परिवार के किसी सदस्य की आवाज नहीं है परन्तु फिर भी ये इस डर से कि कोई हमें घर से इस समय निकलते देखेगा तो पूछ बैठेगा कि इस समय कहाँ जा रहे हो। यह सोचकर ये अपने बिस्तर पर लेटकर सोने का स्वांग करने लगे एवं करीब आधे घण्टे बाद फिर इस नीयत से निकले कि अब चलकर आत्महत्या कर लूँ। भाई जी डेढ़ बजे से लेकर साढ़े चार बजे प्रातःकाल तक बाहर निकलने के लिए अपने मकान का दरवाजा खोजते रहे परन्तु इन्हें बाहर निकलने का दरवाजा मिला ही नहीं, इन्हें चारों तरफ दीवाल ही दीवाल दिखलायी दे रही थी। जब–जब इन्हें ऐसा आभास होता था कि यहाँ मकान से बाहर निकलने का दरवाजा है तो उस स्थान पर कभी योगेश्वर श्री प्रभु जी एवं कभी आराध्यदेव श्री सद्गुरू देव जी महाराज का अस्पष्ट स्वरूप दिखलायी दे देता था। इन्हें रोग के महान कष्ट के कारण कई दिन से नींद नहीं आयी थी, इन्होंने समझ लिया कि अब सवेरा हो गया है, अतः इन्होंने चारपायी पर लेटकर पंचाक्षरी मंत्र का जाप करना शुरू कर दिया।

इस सम्बन्ध में यहाँ उल्लेख करना उचित होगा कि यद्यपि वे योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्यदेव के प्रत्यक्ष या परोक्ष दर्शन लाभ तो किया करते थे परन्तु उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि ये दोनों परात्पर सत्तायें कौन हैं ? क्योंकि इसके पूर्व लौकिक रूप से गुरूदेव के स्थूल शरीर से लोक व्यवहार में इनका परिचय नहीं हो पाया था। उस दिन जब ये साढ़े चार बजे अपने तख्त पर पीठ के बल लेटकर पंचाक्षरी

मंत्र का जाप कर रहे थे, उसी समय एक बड़ा ही अलौकिक रिमझिम रिमझिम का प्रकाश एक अलौकिक सुगन्ध के साथ इन्हें अनुभव होने लगा। इन्होंने आँख खोलकर देखा तो इन्हें श्री प्रभुजी के स्थूल दर्शन अभय एवं आशीर्वाद की मुद्रा में हुए। योगेश्वर श्री प्रभुजी के दिव्य कर कमल से निकली आशीर्वाद की तेज धारा, जिसका इन्होंने स्पष्ट स्थूल अनुभव किया, इनके अन्दर प्रवेश कर गयी एवं इन्हें बड़ी ही आनन्ददायक प्रगाढ़ नींद आयी। इन्हें इसके पश्चात् एक आवाज सुनायी दी कि 'लल्ला जाप करो', खैर इन्होंने उस आवाज की अनसुनी कर दी एवं सो गये। इसके चन्द मिनटों बाद ही इनकी साध्वी धर्म पत्नी ने इन्हें झकझोर कर उठाया एवं कहा कि श्री प्रभु जी आदेश कर रहे हैं कि आप मंत्र जप करें। इन्होंने कहा कि कौन प्रभुजी है और किसका मंत्र जप करने की आज्ञा दे रहे हैं। तब इनकी पत्नी ने कहा कि ये तो हमको भी पता नहीं परन्तु हमें आपसे यह कहने की भीतर (अन्तःकरण) से किसी ने आज्ञा दी है। इसके पश्चात् जब ये सोने का प्रयास करने लगे तो स्वप्न में इन्हें एक बच्ची के दर्शन हुये। उसने आदेश दिया कि मंत्र का जाप करो। इसके पश्चात् ये मंत्र जप करते हुये सो गये।

उस दिन से लगातार करीब एक सप्ताह तक इन्होंने पंचाक्षरी मंत्र का जाप किया एवं बराबर उस स्वप्न में देखी गयी बालिका को माँ रूप में मानकर यह अन्तःकरण से प्रार्थना करते रहे कि माँ ! मैं किसका जप करूँ एवं श्री प्रभु जी कौन है ? करीब एक सप्ताह बाद माँ ने इन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "बेटा ! घबड़ाओ नहीं, अब तुम्हें पूर्ण सद्गुरू मिल जावेगें एवं उन्हें पाकर तुम्हारा लोक–परलोक जीवन धन्य हो जावेगा।

ठीक दूसरे दिन हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई, श्री नारायण दत्त शर्मा जी ने इन्हें अपने पास बुलाया एवं कहा कि भाई ! तुम हमारे गुरूदेव भगवान के दर्शन कर लो तुम्हारे सब कष्टों का स्वयं निवारण हो जायेगा। श्री प्रेमचन्द जी के साथ श्री शर्मा जी दफ्तर से निकले, बाजार गये, साथ–साथ मौसम्मी का रस पिया एवं अकारण दयालु श्री सद्गुरूदेव जी महाराज का पावन, योगयुक्त एवं अलौकिक करूणामय चरित्र सुनाते रहे। श्री प्रेमचन्द जी के अन्दर आराध्यदेव जी के स्थूल दर्शन की तीव्र उत्कंठा जागृति हो गयी। श्री शर्मा जी ने कहा कि वेतन मिलने पर पहली तारीख के बाद श्री गुरूदेव के दर्शनार्थ साथ ही श्री सवाई धाम चलेंगे। फिलहाल गुरूदेव भगवान से पत्र द्वारा आज्ञा तो प्राप्त कर लें। श्री शर्मा जी ने आज्ञा वाले पत्र में श्री प्रेमचन्द सविता के बारे में भी लिख दिया था। वह इस तथ्य से अवगत हुआ कि श्री प्रेमचन्द जी के पास श्री गुरूदेव भगवान का पत्र आया, जिसमें लिखा था, "लल्ला प्रेमचन्द ! हमारे तुम्हारे संस्कार पिछले जन्मों के है और शायद तुमने इसे अनुभव भी कर लिया होगा, तुम आश्रम आ जाओ, तुम्हारे सब कार्य बन जायेंगे।" आराध्यदेव जी का यह कृपापत्र पाकर ये भाव विभोर हो गये एवं पत्र के साथ आदरणीय भाई श्री शर्मा जी के पास गये। श्री शर्मा जी से सलाह मशविरा तय कर इन्होंने आश्रम जाने का दिन एवं दिनांक तय किया।

जिस दिन श्री सवांई धाम जाना था उससे एक दिन पूर्व रात में ही श्री प्रेमचन्द जी, श्री शर्मा जी के घर चले गये एवं सबेरे हमारे ये भाई प्रातःकाल चलकर सायंकाल करीब तीन बजे आश्रम पहुंच गये। श्री प्रभु जी पत्रों का उत्तर लिखवाकर श्री गुरूभवन के सामने आरामकुर्सी पर विराजमान थे। पहुंचकर दोनों लोगों ने श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किया। जिस प्रकार एक बछड़ा अपनी बिछुड़ी हुई मां से बहुत दिनों बाद मिलने पर लिपट जाता है उसी प्रकार ये पुराने संस्कारी बच्चे श्री प्रेमचन्द जी अपने चिरपरिचित गुरूदेव को पहचान कर अपनी धरोहर पाकर, अपने प्राणप्यारे को पाकर लिपट गये।

इनके विशेष आग्रह पर त्रिकालदर्शी आराध्यदेव श्री गुरूदेव जी महाराज ने इन्हें त्रिजग पावन, योगेश्वर, भगवान श्री कृष्ण चन्द जी महाराज के जन्म दिवस 'जन्माष्टमी' पर योग दीक्षा देकर इन्हें निहाल कर दिया। धन्य है ऐसे गुरूदेव एवं अनुपम है उनकी करूण कृपा।

अधम नीच पापी हूँ जग का,
मलीन पाप लिपटाया है।
तुम हो दीन दयाल प्रभु,
इसलिए हमें अपनाया है।।

खड़े होओ, साहसी बनो, शक्तिमान होओ। सारा उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लो और जान लो कि तुम्हीं अपने भाग्य के विधाता हो। तुम्हें जो कुछ बल और सहायता चाहिये, सब तुम्हारे ही भीतर है। अतएव अपना भविष्य तुम स्वयं गढ़ो। यह संसार कायरों के लिये नहीं है। भागने का प्रयत्न मत करो। सफलता या असफलता की परवाह मत करो। उठो और काम में लग जाओ। यह जीवन, भला है कितने दिन ? जब तुम इस दुनिया में आये हो तो कुछ चिन्ह छोड़ जाओ। अन्यथा तुम में वृक्ष आदि में अन्तर ही क्या ? वे भी तो पैदा होते हैं, परिणाम को प्राप्त होते हैं और मर जाते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

ईश्वर-प्राप्ति का मुख्य सोपान

अनासक्त-निष्काम कर्मयोग

डा. जयनारायनराय, (लखनऊ)

आसक्त कर्म, सकाम कर्म आदि को साधारणतया यही समझते है कि मन और इन्द्रियों के अनुकूल सांसारिक पदार्थों और कर्मों में चित्त को मोहने वाली वृत्ति आसक्ति है। जब इस आसक्ति का त्याग सर्वथा होता है, तो इसे अनासक्ति कहते हैं। इसी प्रकार पुत्र, धन, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्ग आदि सांसारिक सुखदायक सम्पूर्ण पदार्थों की कामना—वृत्ति ही सकाम कर्म है। जब इन कामनाओं का त्याग सर्वथा होता है तो निष्काम कर्म कहते हैं।

इन्हीं विषयागत प्रश्नों को अखिलात्मा श्री कृष्ण के मुखारविन्द से कर्म और अकर्म के शास्त्रीय विवेचन में यह पाते हैं कि 'कर्म में अकर्म और 'अकर्म' में कर्म देखने का गूढ़ तत्व यही है कि निःसंग बुद्धि से फलाशा रहित कर्म में बन्धकत्व न रह जाय तभी इसे **'अनासक्त निष्काम कर्म'** कहते हैं।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि आसक्ति और कामनायें जन्म—मरण के भंवर—जाल में बन्धन की निरन्तर कड़ी बन जाती हैं। अविद्या (अज्ञान) से आसक्ति और कामनाओं का बन्धन जकड़ता जाता है। दम्भ, घमण्ड, अभिमान, काम, क्रोध आदि आसुरी वृत्तियाँ भी आसक्ति और कामनाओं का साथ पाकर अपना विस्तार करती जाती है, जिससे मनुष्य के जन्म—मरण का भोग समाप्त होता ही नहीं। कटु सत्य है कि मनुष्य के जीवन में जितने शुभ और अशुभ कर्म होते हैं उनका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। मनुष्य योनि प्राप्त होने पर मनुष्य के शुभ—अशुभ कर्म अन्य प्राणियों के सम्पर्क में आने से क्लिष्ट—संचित—क्रियमाण प्रारब्ध कर्म मनुष्य की भोग—योनि में अपना महत्व पूर्ण भाग लेते हैं। यही कारण होता है कि मनुष्य को फल—भोग के लिए संसार में बार—बार जन्म लेना पड़ता है और जन्म—मरण के भंवर जाल से वह नहीं निकल पाता है।

जब कभी शुभ—कर्मों के अधिक प्रबल होने पर मनुष्य की अविद्या (अविवेक) में कमी होती है तो वह अच्छे कर्म के प्रति जागरूक हो जाता है। वेदव्यास भगवान ने मनुष्य को सौ वर्ष के जीवन में बराबर कर्म करते रहने का उपदेश दिया और कहा कि मनुष्य कर्म भोग से लिपायमान नहीं होता है यथा:—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेद् शतं समाः।
त्वपि नान्यतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरैः।।

यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि मनुष्य सतत कर्म करता रहे तो उसमें अपने आत्म कर्म के प्रति अनासक्ति और निष्काम भाव प्रबल होते जायेंगे। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने उपदेश में अर्जुन से कहा कि—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षिभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।

अर्थात्—इसे जानकर प्राचीन समय के मुमुक्षु लोगों ने भी कर्म किया था; इसलिये पूर्व के लोगों के

किये हुए अति प्राचीन कर्म ही तू कर।

कर्म, अकर्म, विकर्म, निष्काम कर्म विषयक श्रीकृष्ण भगवान् के उपदेश देखें तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि इन शब्दों का शास्त्रीय विवेचन कितना गूढ़ एवं गहन है जैसा कि नीचे के श्लोकों से स्पष्ट है कि—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥
कर्मण्यकर्म यः पश्येद कर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु सयुक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥

अर्थात्—इस विषय में बड़े विद्वानों को भ्रम हो जाता है कि कौन कर्म है और कौन अकर्म, अतएव वैसा कर्म तुझे बतलाता हूँ, कि जिसे जान लेने से तू पाप से मुक्त होगा। कर्म की गति गहन है अतएव यह जान लेना चाहिए, कि विकर्म (विपरीत कर्म) क्या है, और यह भी ज्ञात कर लेना चाहिए, कि अकर्म क्या है कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म जिसे दीख पड़ता है, वह पुरुष सब मनुष्यों में ज्ञानी है और वही युक्त अर्थात् योगयुक्त एवं समस्त करने वाला है।

उपर्युक्त श्लोकों में कर्म, अकर्म, विकर्म के विषय में जो बतलाया गया है, वह दृष्टि निष्काम कर्म करने वाले योगी की है। मनुष्य जब तक सृष्टि में है, तब तक उससे कर्म नहीं छूटता। अतः कर्म, अकर्म का विचार इस दृष्टि से करना चाहिए कि मनुष्य को वह कर्म कहाँ तक बद्ध करेगा। करने पर भी जो कर्म हमें बद्ध नहीं करता, उसका कर्मत्व अथवा बन्धकत्व नष्ट हो गया तो वह कर्म 'अकर्म' है। इसे और स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं कि कर्म के फल का बन्धन न लगने के लिए फलाशा छोड़कर निष्काम बुद्धि से जो कर्म किया जाय, वह सात्विक कर्म है। जो तामस कर्म अज्ञान और मोह के कारण हुआ करते हैं, उन्हें विकर्म (विपरीत) कहते हैं। कर्म, अकर्म और विकर्म के विषय में श्रीकृष्ण भगवान् के वचन को सुनकर अर्जुन के मन में शंका पैदा हो गयी और शंकास्पद होकर उन्होंने यह जानकारी चाही:—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वदनिश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥
—गीता अ० ३/१/२

अर्थात्— हे जनार्दन ! यदि आपका यही मत है कि कर्म की अपेक्षा साम्य बुद्धि श्रेष्ठ है तो फिर हे केशव। मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हो। यानी यदि आप अकर्म को ठीक समझते हैं तो मिलेजुले सिद्धान्तों को बतला कर मेरी बुद्धि को भ्रमित क्र रहे हैं। इसलिए एक बात को निश्चित करके मुझे बतायें, जिससे मुझे श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त हो। अर्जुन के मनोभावों को समझ कर कृष्ण भगवान् ने उत्तर दिया कि—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते।।
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण:।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण।।

—गीता अ० ३/८

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष:।।

—गीता अ० ३/१९

हे अर्जुन ! इस संसार में दो प्रकार से इस सिद्धान्त को समझाया गया है। सांख्यशास्त्र का अनुगमन करने वाले लोगों को ज्ञानयोग के द्वारा तथा योगियों को कर्मयोग द्वारा। संसार में कैसा मनुष्य क्यों न हो वह कर्म को आरम्भ किए बिना ही निष्क्रमता को प्राप्त नहीं कर सकता। जो लोग कर्म मीमांसा को न समझकर कर्म सन्यास कर बैठते हैं वे लोग सिद्धि को नहीं पा सकते। क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई भी शान्त भाव से बैठा रहे। प्रकृति स्वयं ही कर्म करवा लेती है।

इसके अतिरिक्त कर्म सिद्धान्त को न समझ करके कोई व्यक्ति यदि कर्मेन्द्रियों का संयम न करके इन्द्रियों के विषय का चिन्तन करता रहता है तो वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है। जो व्यक्ति कर्मेन्द्रियों पर मन से नियन्त्रण करके आसक्ति रहित होकर के कर्म करता है वह श्रेय की ओर बढ़ जाता है। इसलिए हे अर्जुन! तू शंका छोड़ कर निश्चित मन से कर्म कर। क्योंकि मनुष्य कर्म के द्वारा ही निष्कर्मता को प्राप्त होता है। इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य–कर्म सदैव किया कर। क्योंकि आसक्ति छोड़कर कर्म करने वाले मनुष्य को परमात्मा की प्राप्ति होती है।

श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को कर्म व अकर्म के महत्व को स्पष्ट किया और यह भी कहा कि जो मनुष्य सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, उन्हें करना न करना अवशेष नहीं रह जाता है, ऐसे लोगों को भी विरक्त जनक आदि महान् कर्मयोगियों की भांति, लोकसंग्रह की दृष्टि से कर्म करना ही उचित है क्योंकि जनक आदि ने भी कर्म से ही सिद्धि पायी थी। अत: श्रेष्ठ (आत्मानी कर्मयोगी) पुरुष जो कुछ करता है, वही अन्य यानी साधारण मनुष्य भी किया करते हैं। वह जिसे प्रमाण मानकर अंगीकार करता है, लोग उसी का अनुसरण करते हैं। यथा:—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

—गीता अ० ३/२०, २१

यहाँ लोकसंग्रह, शब्द में 'लोक' का अर्थ व्यापक है; अत: इस शब्द में न केवल मनुष्य जाति को ही वरन् सारे जगत् को सन्मार्ग पर लाकर उसको नाश से बचाते हुए संग्रह करना अर्थात् भली–भांति धारण, पालन–पोषण या बचाव करना इत्यादि सभी बातों का समावेश हो जाता है।

यदि मनुष्य उच्चकोटि की स्थिति में पहुँचने पर भी अपने को लोकसंग्रह की दृष्टि से सदैव कर्मरत रहकर 'कर्म' में अकर्म और 'अकर्म' में कर्म देखता है तो वह आसक्ति रहित निष्कामता को प्राप्त होकर भवचक्र से छुटकारा पाकर ईश्वर की प्राप्ति कर लेता है।

***

योगमन: स्थिति, वर एवं श्राप

डा० श्री विजयसिंह, गोरखपुर

मानव इतिहास उत्थान–पतन की ही गाथा है। पुरुषार्थ एवं प्रारब्ध का खेल व्यक्ति ही क्यों समाज तथा राष्ट्र को भी प्रभावित करता आ रहा है। लौकिक जीवन में पुरुषार्थ तथा प्रारब्ध का परिणाम कहीं बिल्कुल भिन्न कहीं दोनों का समन्वित रूप और कभी प्रारब्ध की ही अपूर्व महिमा दिखाई पड़ती है, परन्तु आध्यात्मिक जीवन जीने वालों के लिए पुरुषार्थ और प्रारब्ध का स्वरूप अत्यन्त जटिल हुआ करता है। पुरुषार्थ महामोक्ष की प्राप्ति या यों कहें कि सदैव आवागमन को चक्र श्रृंखला को तोड़ना ही है। अत: प्रारब्ध (उदार संस्कार) कभी सहायक और कभी अन्तराय रूप से साधक की साधना के पथ में सहायक स्थितियों–दैव, ऋषि, परम आत्मीयजनों के शुभेच्छा अथवा वर से सहज सुलभ हो जाती है। वहीं क्रूर कर्मों के सम्पादन अथवा पूर्व क्लिष्ट उदार संस्कारों के भुगतान रूप श्राप पतन का भी कारण बन जाता है। हमारे वांगमय वर–श्राप की अद्भुत अलौकिक कथाओं से भरे हुए हैं।

संकल्प सिद्ध, वाचा सिद्ध पुरुषों द्वारा कथित वाणी हूबहू घटित हुआ करती है किसी ने कहा है–

सन्त बचन पलटै नहीं, पलट जाय ब्रह्माण्ड।

ऐसी परिस्थितियाँ भी कभी–कभी पौराणिक कथाओं में आयी हैं, जब दो विपरीत तप: पुंज, योग युक्त संकल्प–सिद्ध मन: स्थितियाँ आपस में टकराई हैं। आश्चर्य और विचारणीय विषय तो यह है कि वर–श्राप के चक्कर में ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी चक्कर लगाते हुए नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं तथापि इन अनादि सिद्ध योगियों की बात ही कुछ और है। उनके ऊपर वही सिद्धान्त लागू नहीं होते जो साधारण बद्धकोटि जीवों पर होते हैं।

कभी किसी व्यक्ति ने परम करुणार्णव सद्गुरु जी से पूछा था कि–प्रभो ! कपिल भगवान तथा अनेक ईश्वर कल्प महापुरुष भी काम, क्रोध के अधीन होकर श्राप–वर देते हुए पुराणों में वर्णित हैं इसका रहस्य क्या है ? मेघ सी गम्भीर वाणी में श्री प्रभुजी ने कहा– देखो ! एक कठिन जाल के अन्दर साधारण व्यक्ति फांस दिया जाये तो वह सर्वथा बद्ध रहकर कष्ट ही कष्ट पाकर दुर्गति को प्राप्त होगा। परन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति जाल में फंसा दीखे जिसके पास सुतीक्ष्ण शस्त्र ही औजार हो जाल काटने का, तो उसका जाल बद्ध होना सामयिक मात्र है। वह जब चाहे बन्धन मुक्त अपने को कर लेगा। बात समझ में आई न। जो अनादि सिद्ध, तप:युक्त, योगैश्वर्य सम्पन्न महापुरुष हैं उनके चरित्र खेल जैसे हैं। त्रिगुणात्मक प्रकृति–शक्ति का महत्व क्या है ? माया कितनी बलवती है ? ईश्वर सहचरी चिदात्मिका कितनी समझ है। यह बात इन लीला कथाओं से स्पष्ट हो जाती है योगेश्वर श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है–

"मम माया दुरत्या"।

पहले ही हमने कहा है कि लौकिक जीवन और परलौकिक जीवन को अध्यात्म में समान भाव से महत्व दिया गया है। अपितु साधना की दृष्टि में पारलौकिक जीवन का महत्व लौकिक जीवन से अधिक ही आंका जाता है। बड़े–बड़े राजर्षियों ने लौकिक जीवन में प्राप्त यश ऐश्वर्य को त्याग कर समय रहते अपने अध्यात्मिक जीवन की नींव को सुदृढ़ कर लिया तथा मोक्ष सोपान के चरम स्थिति को भी प्राप्त हुये। मूलत: वर व श्राप दोनों ही आँच की

परमगति में सहायक ही सिद्ध होने वाली घटनायें हैं। ऐसा बताया गया है कि वर द्वारा व्यक्ति के संचित संस्कार कोष में जन्म–जन्मान्तरों से एकत्रित सकाम पुण्यबीज जो कालान्तर न जाने कब भुगतान में आते उन्हें वरदाता द्वारा सुनियोजित करके जल्द ही फलदायी बना दिया जाता है। इसी प्रकार क्लिष्ट कर्म फल संचय द्वारा ही श्राप का नियोजन सम्भव हो पाता है। जिससे जो बुरे परिणाम शनै:–शनै: अनेकों जनम व योनियों में जाकर भुगतने होते हैं, वे सद्यः प्रकट एवं संघटित होकर क्लिष्ट उदार संस्कारों का रूप ले लेते हैं।

वर–श्राप का भी तन्वीकरण :–

योग वाशिष्ठ में भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ से एक विचित्र प्रश्न सत्य संकल्पता के बारे में पूछा है। उन्होंने कहा– भगवन ! आपने जैसा बताया कि सत्य संकल्प लोगों को जाग्रत, सुषुप्ति, सभी दशाओं में जो विचार मन में उठते हैं वे सत्य रूप ही होते हैं। (ऋतम्भरा प्रज्ञा जैसी स्थिति) फिर यदि दो सत्य संकल्प वाले सिद्ध परस्पर विरोधी संकल्प करें तो वैसी अवस्था में क्या होगा ? किसी न किसी का संकल्प मिथ्या सिद्ध होगा अथवा दोनों के संकल्प मिथ्या होंगे। इस विषय में आपका मत क्या है ? भगवान वशिष्ठ ने कहा–राम ! दो समान पौरुष, वीर्य, कला, सिद्ध सम्पन्न, योद्धा युद्ध में तत्पर हों तो कौन जीतेगा इस बात का निर्णय अभ्यास की सुदीर्घता तथा आभ्यान्तरिक निष्ठा पर निर्भर करेगा। जो जितना अधिक अभ्यासी होगा उसी की जीत होगी। यही बात दो सत्य संकल्पी सिद्धों के विपरीत संकल्पों के बारे में जानना चाहिए।

उपरोक्त तथ्य के परिप्रेक्ष्य में किसी सिद्ध द्वारा दिया गया वर अथवा श्राप का परिणाम सर्वथा न्यूनाधिक रूप में गौड़ या प्रधान किसी अन्य महत्तर महासिद्ध द्वारा किया जा सकता है। इस बात को पूरी तरह समझने हेतु परम पूज्य ब्र० गोपालानन्द जी की आत्मकथा में वर्णित घटना को ध्यान में रखना होगा। जिस समय ब्रह्मचारी जी अपने पूर्ववर्ती हठयोगी महात्मा को छोड़कर परम करुणार्णव सिद्ध सिद्धेश्वर श्री महाप्रभु रामलाल जी के शरणागत हो दिव्य ध्यान स्थित को प्राप्त हुए उस समय ध्यान में एक दिन क्रोधावेश में आकर उनके हठयोगी महात्मा ने कहा–तूने हमारे बताये मार्ग का त्याग किया है अत: तेरे रोग बिगड़ जायेंगे, तू दारिद्र जीवन व्यतीत करेगा और अल्प आयु भोगी होगा। उसी दिन से रोग बिगड़ने लगे। शहर में अपयश फैलने लगा। ब्रह्मचारी जी ने श्राप का ख्याल कर श्री महाप्रभु जी के अभय चरण–कमलों में पत्र लिखे, उसका उत्तर श्री प्रभु जी ने इस प्रकार अभयदायी शब्दों में श्राप मोचन करते हुए वर रूप में दिया– चिरंजीव ! जो कैशला छोड़कर व गणपति गौरा को त्यागकर हर समय तुम्हारे साथ रहते हैं इतने पर भी तुम श्राप का भय करते हो। जब तुम्हारे पास हमारा यह पत्र पहुँचेगा उसी समय से औषधियों में चौगुनी शक्ति हो जावेगी और रोग सब ठीक हो जायेंगे, जीवन भर तुम स्वस्थ रहोगे, यदि तुम्हारी स्वत: इच्छा हुई तो बड़े धनिक बन सकते हो, तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी। परम अहैतुकी नारायण श्री महाप्रभु जी ने अपनी कृपा परवशता से ब्र० गोपालानन्द जी के जीवन में उत्पन्न महाभयावह श्राप जनित अंधकार को सर्वथा निर्मूल कर सम्प्रज्ञात समाधि के अपूर्व प्रकाश का वरदान भी दे दिया।

दूसरी घटना मेंडू मल्लाह द्वारा महात्मा श्री कृष्णानन्द जी को दिये गये श्राप की कथा है। जिसे सामयिक रूप से दयार्द्र दयानिधि ने उस समय टाल

दिया परन्तु उनके उत्तरवर्ती जीवन में स्वयं महाप्रभु जी ने प्रकट होकर आदेश दिया कि अब उस श्राप को भोग में ले लो नहीं तो आगे अगले जन्म को व्यर्थ में नष्ट करेगा। श्री प्रभुजी की कृपा से शीघ्र ही भुगतान हो गया।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी (सद्गुरुदेव जी) एक बार बोले—दो प्रकार के संस्कारों का भुगतान करना ही पड़ता है उसमें सद्गुरुदेव भी बहुत खुल कर मदद नहीं कर पाते। एक तो जघन्यकृत कर्मों के फल में, दूसरे अपने ही घरों की लेन—देन में (एक ही सत्ता से प्राप्त शक्ति का आपस में ही गुणवृत्ति विरोध कारण क्षोभ से दिया गया श्राप)।

साधक की प्रकृति ही वर—श्राप का कारण :—

वाराणसी में योग प्रवचन करते हुये परम पूज्य श्री प्रभुजी ने कभी कहा था— जो साधक यम, नियम का दृढ़तर पालन नहीं करते वे सद्गुरु कृपा शक्ति से साधना जगत में ध्यानाभ्यास से आत्मिक शक्ति को तो प्राप्त हो सकते हैं परन्तु ऐसे साधकों का पतन होने की सम्भावना रहा करती है। पहाड़ों की बात और है। वहाँ जिसे सिद्ध लोग ग्रहण कर लेते हैं फिर उसे भूतल पर आने नहीं देते। वे उन्हें निरन्तर दीर्घकालिक समाधि के अभ्यास में लगा देते हैं। पहाड़ों में ऐसे साधक जनहीन प्रदेशों में तत्व जयता तथा समाधि अभ्यास से अपने पूर्व संचित संस्कार बीजों को दग्ध कर देते हैं। संग दोष न होने से उदार संस्कार भी समाधि निरन्तर होने के कारण निष्फल हो जाते हैं। नये संस्कार एकाग्र, निर्जन, संगरहित समाधिरत होने के कारण नहीं बन पाते। परन्तु समाज में रहकर साधन करने के लिए यम, नियमों में निष्ठा होना परमावश्यक है क्योंकि ऐसा न होने पर इन्हीं छिद्रों से आत्मशक्ति का ह्रास होता है। सम्प्रज्ञात अथवा असम्प्रज्ञात समाधि के किसी भी अवस्था से प्रकृतस्वता को प्राप्त होने पर स्वभाव सिद्ध प्रकृति ही वर्णन करने लगती है। तब क्रोध भाव वाले को संग होने पर क्रोध इसी प्रकार अन्य संगों का भी प्रभाव मन पर पड़ता है। यह बात और है कि साधक वैराग्य एवं यम, नियमों के अभ्यास से संग प्रभाव को मन में स्थान ही न दे। अन्यथा संग प्रभाव से प्रसन्न होने पर वर रूप में तथा अप्रसन्न होने पर श्राप रूप में एकाग्र मन: चेतना शक्ति उपकार अपकार में लग ही जावेगी। भागवत् गीता में जगद्गुरु भगवान श्री कृष्ण ने ऐसे कर्मयोगी संसार सेवी साधकों के लिए आदर्श सिद्धान्तों का उपदेश किया है—

निर्मानमोहा जितसंग दोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्त कामा:।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुखदु:खसंज्ञै,
र्गच्छन्त्यमूढ़ा पदमव्ययं तत्।।

उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि श्री प्रभुजी द्वारा वर्णित योगिराज सुन्दरगिरि वखाडिया तथा स्वामी हरिहरानन्द कालिका विराध उपख्यान से स्पष्ट हो जाती है। वहीं माता द्रोपदी जी द्वारा श्री महाप्रभुजी के चरणकमलों में भाव प्रणव भक्ति गीत गाने पर तुरीय स्थिति सम्पन्न स्वामी मुलखराज जी द्वारा आग्रह पूर्वक चूडाला सम्पत्ति का वरदान दिलवाना भी उपरोक्त भाव की ही पुष्टि करता है।

पात्रता, पदार्थ और काल—

वरदान प्राप्त करने की अगणित कथाओं को हम समझने की सुविधा के लिए दो वर्गों में बाँट लेते हैं। प्रथमत: मोक्ष, भक्ति, ज्ञान हेतु तप स्वाध्याय द्वारा साधक को देवता, सिद्ध, ऋषिगण लोगों का दर्शन एवं कार्य सिद्धि हेतु वर प्राप्त करने वाली दिव्य कथायें, दूसरी लौकिक ऐषणाओं एवं कल्पनातीत

ऐश्वर्य, आयु, बल, कीर्ति की प्राप्ति के लिए अभीष्ट तप स्वाध्याय साधक द्वारा किया जाना। दोनों ही अवस्था में वर प्राप्ति के लिये साधक की पात्रता कार्य की गुरुता के अनुरूप होना आवश्यक है अन्यथा कार्य सिद्धि असम्भव हो जाता है।

तीव्र संवेगानामासन्नः।

भगवान पतंजलि का यही निर्देश है। आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने हेतु। सर्वत्र विराजित चिदात्मिका शक्ति स्वयं ऐसे व्यक्ति पर प्रसन्न होकर अपने स्वरूप का ज्ञान प्रदान किया करती है। आत्मा स्वयं ऐसे साधकों का वरण किया करती है। यही पात्रता है।

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः।

इस सूत्र का स्पष्टीकरण भगवान वेद व्यास ने किया है—

देवाः ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शनं यच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति।

देवता लोग, सिद्ध लोभ व ऋषिगण तीव्र संयोग से स्वाध्यायशील व्यक्तियों को दर्शन देकर सफल मनोरथ करते हैं। स्वाध्याय, तप, दम की तत्परता, तीव्रता ही वर प्राप्त करने की पात्रता है। इसीलिए तो पौराणिक कथाओं में राक्षस भी अपनी तप निष्ठा एवं तत्परता से ब्रह्मा, विष्णु तथा भगवान शिव से नाना वरदान प्राप्त कर पाये हैं।

दूसरी वस्तु है पदार्थ। अकल्पनीय कल्पना को भी मूर्त करने हेतु यदि साधक में पात्रता हो तो इष्ट द्वारा अकल्पनीय पदार्थ भी अदेय नहीं होता। पदार्थ नित्य है। योगी ब्राह्मी सृष्टि सदृश अपनी नूतन सृष्टि की रचना में सक्षम होते हैं। अतः पदार्थ की अपरमिता, अनन्तत्व, भिन्नत्व की दशा में भी वरदाता सर्व समर्थ सिद्धों के लिए अदेय कुछ है ही नहीं।

कर्तुम कर्तुमन्यथा कर्तु सर्वथा शक्तः स सिद्धः

जिसमें वर—श्राप देने की, अनुग्रह—निग्रह की सर्व प्रकार शक्ति हो वह सिद्ध कहलाते हैं। तीसरा अवयव है काल—जिस व्यक्ति की निर्मल चेतना काल तत्व का सूक्ष्मतम बोध कर लेती है उसे ही परमपद स्थिति मोक्ष प्राप्त होती है। ज्ञान, भक्ति, समाधि उसी साधक को प्राप्त होता है जिसके मन में कालदेव अपने स्वभाव स्वरूप का यथार्थ बोध करा देते हैं जिस साधक को अन्तःतल में नचिकेता की भांति बोध होगा यथा—

किं श्रिया किं च राज्येन किं देहेन किमीहितैः।
दिनैः कतिपयैव रेव कालः सर्वे निकृन्तनि।

लक्ष्मी से क्या प्रयोजन ? राज्य का क्या करना ? शरीर से ही क्या होगा ? मनोरथों से क्या ? अरे थोड़े दिनों में काल इन सबों को काट देगा। अथवा—

पेलवं शरदीवाभ्रम— स्नेह इव दीपकः।
तरंगक इवलीला गतमेवापलक्ष्यते।।
प्रत्यहां खेतमुत्सृज्य शनरलमनारपम्।
आखुमेव जरच्छुभ्रम् कालेन विनिहन्यते।

शरद ऋतु के बादल, तेल रहित दीपक और तरंग के समान आयु चंचल और नष्ट प्राय है। जिस प्रकार कोई चूहा निसंकोच भाव से प्रति दिन बिल खोदता रहता है, उसी प्रकार काल भी निर्दयता से धीरे—धीरे काटता रहता है।

साक्षात् कालदेव ने जब नचिकेता को तीन वरदान देना चाहा। उस समय काल तत्व बोध सम्पन्न महामति नचिकेता ने क्षण भंगुर पदार्थों का त्याग कर ब्रह्म विद्या (योग) का ही वरण वरदान रूप में किया।

किसी दुर्लभ लौकिक वर हेतु जिसमें समष्टिगत दीर्घ लाभ की भावना हो अथवा जिसमें समष्टि की हानि निहित हो ऐसे कार्य सिद्धि में भी कारण—कार्य

सम्बन्ध की पूर्ति हेतु काल की महत्ता रहा करती है। मनु शतरूपा द्वारा दीर्घ तपश्चर्या से भगवान नारायण का प्रकट होना स्वयं अपने सदृश पुत्र अभिलाषा दम्पत्ति के हृदय में देखकर अगले जन्म में वर पूर्ति निश्चित करना अथवा दिलीप से आगे कई राजाओं द्वारा भगवती गंगा का धरती पर अवतरण कराने का प्रयास जो सफल न हो सका— कालान्तर में भगीरथ का अपूर्व संवेग से किया गया तप कालावधि से वर प्राप्ति का कारण बना।

अतः वर प्राप्ति में व्यक्ति की साधन पात्रता, अभीष्ट पदार्थ की गुरुता तथा काल तीनों ही अपनी भूमिका निभाते हैं।

जहाँ वर—श्राप की गति नहीं:—

विशोका ज्योति का दर्शन कर जो साधक सहज ही विवेक—ख्याति की ओर बढ़ रहा हो तथा सद्गुरु शरणापन्न हो तो गुरु कृपा से श्राप की गति जो काल प्रेरित हुआ करती उससे सदैव सद्गुरु अपने अनुगत साधक को बचा लिया करते हैं। ऐसा दुर्लभ्य समय उपस्थित होने पर साधक के समस्त प्राण को सद्गुरु खींचकर ब्रह्माण्ड में (जहाँ सहस्त्रदल में स्वयं विराजते हैं जहाँ अकाल स्थिति है, यहाँ काल की गति नहीं है) स्थापित कर देते हैं। श्राप काल के विमोचन होने पर जैसे छूटा हुआ तीर या गोली यदि लक्ष्य वेध विफल हो जाये तो वही तीर पुनः लौट कर वेध नहीं सकता उसी प्रकार एक बार शाप के संघात से बच गया व्यक्ति दोबारा उसी शाप से प्रभावित नहीं हो सकता।

* * *

पौधा अपने आप उगा करता है। बालक स्वतः को ही बढ़ाता है। हम इसे आगे बढ़ने में केवल सहायता भर कर सकते हैं। हम बाधायें हटा सकते हैं, ज्ञान अपने आप उभर आयेगा। मिट्टी थोड़ी गीली कर दीजिये। उसके चारों ओर झाड़ी लगा दीजिये, खाद व हवा आवश्यकतानुसार मिलने दीजिये। यहाँ आपका कार्य समाप्त हो जाता है। वह अपने आप उगेगा हमारा कार्य केवल इतना है कि बालक अपनी बुद्धि व शरीर को लगाने लगे, इसकी सिद्धता करवा देना।

—स्वामी विवेकानन्द

योग 'सिद्धयोग' और आपका सहयोग

'सिद्धयोग' इस अंक के साथ अपने निरन्तर प्रकाशन के ३१ वर्ष पूर्ण कर ३२ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। मानव मूल्यों के सर्वोन्मुखी विकास के लिए आवश्यक योग के सुस्थापित सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य को सम्मुख रखकर परमपूज्य श्री सद्गुरुदेव जी की अहैतुकी अनुकम्पा से योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था। उनके द्वारा सिंचित यह लघु पौधा अब सुविकसित वृक्ष का रूप ले रहा है। लगभग ३० वर्षों तक परम्परागत मुद्रण प्रक्रिया (लेटर प्रेस) से प्रकाशित होते रहने के उपरान्त अब गत दो वर्षों से आधुनिकतम मुद्रण प्रणाली (लैजर–टाइप सैटिंग एवं ऑफसेट प्रिंटिंग) द्वारा इसका प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिकाओं की भीड़ में अपनी अलग पहचान बनाये रखने के उद्देश्य से और व्यावसायिक होड़ से बचने के लिए **'सिद्धयोग'** में किसी भी प्रकार के विज्ञापन प्रकाशित न करने की जो नीति श्री गुरुदेव जी ने निर्धारित की थी, उसका पालन आज भी दृढ़तापूर्वक किया जा रहा है। अतः अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए **'सिद्धयोग'** मुख्यतः अपने ग्राहकों और दानदाताओं पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापक मण्डल को पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए अनुदान के रूप में भी धन की व्यवस्था करनी पड़ती है।

आज जबकि सभी ओर मंहगाई का ताण्डव हो रहा है, तब फिर मुद्रण व्यय और कागज मूल्य इससे कैसे अप्रभावित रह सकते है ? परिणामतः पत्रिका का प्रकाशन मंहगा हो जाना स्वाभाविक है। अतः पत्रिका के मूल्य एवं शुल्क में वृद्धि करने के लिए हम विवश हुए है हालांकि यह मूल्य वृद्धि पत्रिका प्रकाशन पर पड़ने वाले वास्तविक अतिरिक्त व्यय की तुलना में काफी कम है। अब आगामी वर्ष के प्रथम अंक (अप्रैल १९९९) से सिद्धयोग के प्रत्येक अंक का मूल्य रु. ८/- होगा, जबकि वार्षिक, द्विवार्षिक एवं आजीवन सदस्यता शुल्क क्रमशः रु ७५/- रु. १४०/- एवं रु. ७५०/- निर्धारित किया गया है। विश्वास है सभी ग्राहक बंधु हमारी इस विवशता को हृदय से समझेंगे।

प्रस्तुत मार्च '९९ अंक ३१ वें वर्ष का अंतिम अंक है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का पत्रिका के ३१ वें वर्ष का शुल्क समाप्त हो जाता है। अतः सभी ग्राहकों एवं गुरु भाई-बहिनों से निवेदन है कि वे ३२वें वर्ष का नवीन संशोधित शुल्क (रु. ७५/–) सिद्धयोग कार्यालय, सवाई (आगरा) में पहुँचकर ब. राजेशचन्द शर्मा अथवा आचार्य ब. दाउलाल शर्मा के पास जमा करायें या मनीआर्डर द्वारा इन्हीं के नाम से **सिद्धयोग कार्यालय, श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा)** के पते पर भेजें। चूंकि वी०पी० द्वारा **सिद्धयोग** मंगाना ग्राहकों के लिए बहुत व्ययसाध्य होगा अतः पत्रिका शुल्क मनीआर्डर से ही भेजने में सुविधा रहेगी। सभी गुरुभाई बहिनों से अनुरोध है कि वे अपने–अपने क्षेत्रों में **'सिद्धयोग'** के प्रचार–प्रसार के लिए पूरे मनोयोग से प्रयासरत रहें, ताकि योग – सिद्धान्तों की अखण्ड ज्योति अधिकाधिक महानुभावों के जीवन को आलोकित कर सके। भौतिकता के वर्तमान दौर में दिग्भ्रमित हो गये समाज का केवल **'योग'** ही यथार्थ दिग्दर्शन कर सकता है **'सिद्धयोग'** उसके लिए निश्चित ही योग–शिक्षा का प्रथम सौपान सिद्ध होगा।

'सिद्धयोग' शीर्षक को सार्थक बनाने में जिन मनीषी रचनाकारों – लेखकों का निरंतर सहयोग मिल रहा है, हम उनके आभारी हैं। उनकी उत्कृष्ट–सारगर्भित रचनाएँ ही **'सिद्धयोग'** की शक्ति है, जिसका अवलम्बन कर यह पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसित हो रही है। विश्वास है श्री सद्गुरु के आशीर्वाद, प्रबुद्ध लेखकों के निरन्तर सहयोग और सुधी पाठकों के सतत् स्नेह से सम्बल पाकर यह योग–पत्रिका वट वृक्ष की भांति योग के साधकों और जनसाधारण के लिए समान रूप से कल्याणकारी सिद्ध होगी।

—व्यवस्थापक

…द्धान्तों की प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मॉदपुर) आगरा

श्री …

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

(श्रीमद् भगवद्‌गीता ६/२१-२२)

जिस अवस्था में योगी उस परम सुख को जानता है, जो बुद्धि से ही ग्रहण किया जाता है न कि इन्द्रियों से और न उसमें स्थित हुआ तत्व से फिसलता है। जिस आनन्द को प्राप्त कर योगी उससे बढ़कर अधिक और कोई लाभ नहीं समझता है और जिस अवस्था में स्थित योगी महान् दुःख से भी कभी विचलित नहीं होता, उस दुःखों में मेल से अलग अवस्था को योग नाम वाला जाने।

प्रकाशक एवं मुद्रक–विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, …
लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री …
सवांई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326